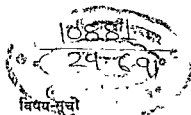


दुनिया

कार्ल मार्क्स

१८४४ की
अर्थशास्त्र
तथा दर्शन 10881
संबंधी 29-691
पांडुलिपियां



. ५

कार्ल मार्क्स

१८४४ की अर्थशास्त्र तथा दर्शन संबंधी
साहित्यिका

.	१५
[इतिवि]	२१
मजदूरी	२१
साम	४४
पूजी	४४
पूजी का साम	४५
धर्म पर पूजी का प्रभुत्व और पूजीपति के अभिप्रेरक	५१
. पूजियों का सचयन और पूजीपतियों में प्रतिद्वंद्विता	५३
का किरामा (लगान)	७१
रत धर्म]	८६

[दूसरी पांडुलिपि]	१
[पूजी तथा धर्म का वैयक्तिक। भू-संपत्ति और पूजी]	१
[तीसरी पांडुलिपि]	१
[निजी संपत्ति और धर्म। गहननैतिक धर्मशास्त्र निजी संपत्ति की गति के उत्पाद के रूप में]	१
[निजी संपत्ति और कम्युनिज्म]	१
[निजी संपत्ति के शासन के अनर्गल मानव प्रोत्साह तथा धर्म विभाजन]	१
[द्रव्य की शक्ति]	१
[हेगेलीय द्वंद्ववाद तथा समग्ररूपेण दर्शन की समीक्षा]	२

टिप्पणियाँ तथा निर्देशिकाएँ

टिप्पणियाँ	२
नाम-निर्देशिका	२१
साहित्यिक एवं पौराणिक नामों की निर्देशिका	२५

श्री जुबिली जर्जरी २०३२ ई. वी

२६ २१२२४, २१२५-१९९९

प्रकाशकीय दिनांक २९-०६-६३

'१८४४ की अर्थशास्त्र तथा दर्शन' सवधी पाठ्यलिपियाँ' मार्क्स के सबसे प्रारम्भिक अर्थशास्त्रीय अन्वेषण का कच्चा मसविदा, उनका बूर्जुआ समाज के आर्थिक मूलधारों और बूर्जुआ अर्थशास्त्रियों के विचारों की अपनी द्वैतात्मक-भौतिकवादी तथा कम्युनिस्ट निष्कर्षों पर आधारित समालोचनात्मक परीक्षा का पहला प्रयास है। साथ ही यह कृति नये दार्शनिक, आर्थिक तथा ऐतिहासिक-राजनीतिक विचारों के, सर्वहारा के समग्र विश्वदृष्टिकोण के सन्वेषण की प्रक्रिया को प्रतिबिम्बित करती है।

मार्क्स ने 'अर्थशास्त्र तथा दर्शन सवधी पाठ्यलिपियाँ' की रचना १८४४ की गरमियों में पेरिस में की थी। उस समय तक वह समाजवादी जर्मनी का, दूसरे देशों में अवस्थानों का, फ्रांसीसी क्रांति के इतिहास तथा अनुभव का अध्ययन कर चुके थे और पूर्ववर्ती दार्शनिक गिडानों, सर्वोपरि हेगेल के गिडान, बूर्जुआ अर्थशास्त्र के आनुभविक प्रमाण तथा सैद्धान्तिक निष्कर्षों, यूटोपियाई समाजवादियों के विचारों का समालोचनात्मक पुनरावलोकन कर चुके थे। इसके परिणामस्वरूप उन्होंने श्रमिक वर्ग के नये क्रांतिकारी वैज्ञानिक विश्वदृष्टिकोण के कुछ आवश्यक गिडानों की कल्पना की। अपने 'हेगेल की विशिष्टीयता की समीक्षा में योगदान' (जिसे उन्होंने १८४३ की गरमियों में ओउबनाउ में लिखा था) और *Deutsch-Französische Jahrbücher* (जिसका एकमात्र और

दुदरा चक गज्जरी, १८४४ में प्रकाशित हुआ था) के नि-
मेयों में उन्होंने दिखाया था कि समाज के रिक्त
आधार भौतिक जीवन-मध्य होने हैं, न कि वैश्विक हा-
मया राज्य के रूप। हमारे समाज का आर्थिक क्षेत्र हम-
लेषण के क्षेत्र में था गया। मानवजाति को मारे हमारे

भुक्त करने के लिए केवल राजनीतिक जाति ही नहीं,
लेकिन सबके ऊपर एक महान सामाजिक जाति की आवश्यकता
। अपने मस्तिष्क में रूप सेने विचारों को स्पष्ट करने
। मार्क्स ने दिखाया कि राजनीतिक जाति राज्यमता के
। के घलावा और कुछ भी नहीं बदलती है, जब कि
। सामाजिक जाति मुख्यतः सामाजिक आधार को प्रभावित
। करती है। और मार्क्स ने यह समझ लिया था कि इस जाति
। मुख्य संचालक सर्वहारा है। उन्होंने—सभी सामान्य प्र-
। ही—मेहनतकश वर्ग के महान ऐतिहासिक भूमिका
। मन के विचार को व्यक्त किया।

‘१८४४ की प्रबंधशास्त्र तथा दर्शन संबंधी पाठ्यलिपियां
। र्स द्वारा अपनी जातिकारी शिक्षा के निरूपण में उद्दि-
। नये कदम को प्रतिबिम्बित करती हैं।

पेरिस में लिखित ये पाठ्यलिपियां सामाजिक विज्ञान
। विभिन्न क्षेत्रों को अपनी परिधि में लेती हैं। इन सभी क्षेत्रों
। मार्क्स ने भौतिकवादी दृष्टात्मक पद्धति को ज्ञान के ए-
। उपकरण की तरह इस्तेमाल और विकसित किया। वे
। राज की संरचना और विकास की समझ की एक न-
। ज्ञान पर पहुंच गये। उन्होंने यही पहली बार सामाजिक
। ज्ञान में उत्पादन की निर्णायक भूमिका पर बल दिया था
। उन्होंने दिखाया कि निजी संपत्ति और धर्म विभाजन समा-
। वर्गों के भौतिक आधार हैं। यूरुभा समाज के आर्थिक

के का विशेषण करते हुए उन्होंने इस पर जोर दिया
 पूँजीवाद के वर्ग-विरोध धन के पूँजीपति स्वामियों के
 भी मे संचेंद्रित होने जाने के साथ-साथ अनिवार्यत गहनतर
 ले जायेंगे। मनुष्य का उत्पादक श्रम और उसके सामाजिक
 बंध विज्ञान तथा सभृति पर जो प्रभाव डालते हैं, उसके
 ारे में मार्क्स के विचार अत्यंत मर्मशाही हैं। उन्होंने निजी
 त्ति के प्रभुत्व के परिणामस्वरूप श्रमजीवी जन के केवल
 सामाजिक दासकरण की प्रक्रिया ही नहीं, बल्कि आत्मिक
 रिद्धीकरण की प्रक्रिया पर भी विशेषकर ध्यान दिया।

इस पांडुलिपियों में मार्क्स ने धार्मिक चिंतन के विवाम
 का मूल्यांकन करने के लिए भौतिकवादी मानदंड प्रस्तुत किया
 और यह स्पष्ट किया कि यह एक ऐसा विश्वास है कि जो
 बौद्धिक क्षेत्र में वास्तविक आर्थिक संबंधों के उद्‌विकास का
 प्रतिबिंब होता है। मार्क्स के अनुसार विज्ञान का विकास
 स्वयं समाज के विकास की पुनरावृत्ति करता है। वह प्रमुख
 बूर्जुआ धर्मशास्त्रियों—ऐडम स्मिथ, रिकार्डो, आदि—की
 शिक्षा को धर्मशास्त्र की उज्ज्वलम उपलब्धि समझते थे।
 लेकिन यद्यपि उन्होंने सभी मूल्य के श्रम सिद्धान्त का विशेषण
 करना शुरू नहीं किया था, फिर भी उन्होंने उनके विचारों
 की सीमाओं पर ध्यान दिया था—वर्णित धार्मिक परिघटनाओं
 के वास्तविक आंतरिक संबंधों तथा गत्यात्मकता को न समझ
 पाना और उनके प्रति उनका तत्त्वमीयासीय दृष्टिकोण।
 मार्क्स ने पूँजीवाद के आधार तथा अमानुषिक शोषण के
 संबंधों को कृत्रिम रूप से चिरतन बनाने के उनके प्रयामों
 में बूर्जुआ धर्मशास्त्रियों की मानवतावादविरोधी प्रवृत्तियों को

[illegible]

'१८४४ की अर्थशास्त्र तथा दर्शन संबंधी पाठ्यलिपियाँ' में एक वैद्रीय समस्या विधोवन (estrangement) अथवा हस्तरीभवन (alienation) की समस्या है। हेगेन ने इस संकल्पना का व्यापक उपयोग किया था। लेकिन उनके लिए हस्तरीभवन वास्तविक जीते-जागते लोगों का नहीं, बल्कि

प्रत्यय का होता है। फायरब्राथ भी अपने धर्म के उद्भव मिथान में इस जैसी सङ्कल्पना को ही लेकर चलते हैं। उम्मे अमूर्त मानव के भौतिक (जातिगत) गुणों के उद्भव में परिणत कर देने हैं, जिन्हें एक आभासी देवत्व अध्यारोपित कर दिया जाता है।

मार्क्स ने इतरीभवन की सङ्कल्पना का प्रयोग सामाजिक श्रेणियों के गहन विश्लेषण के प्रयोजनार्थ किया। उनके लिए उद्भव उन सामाजिक सङ्घों का अभिलक्षण था, जिनके अंतर्गत लोगों के जीवन और क्रियाकलाप की अवस्थाएँ, य वह क्रियाकलाप, और लोगों के बीच सङ्घ एक ऐसी शक्ति के रूप में प्रकट होते हैं, जो लोगों के लिए उत्तरदायी प्रतिकूल है। अतः मार्क्स के निर्वचन में इतरीभवन विभीषण। प्रसार कोई इतिहासोपरि परिघटना नहीं है। मार्क्स उद्भव को निजी संपत्ति तथा उसके द्वारा उत्पन्न की जानेवाली सामाजिक व्यवस्था के साथ जोड़नेवाले पहले चरण थे। उन्होंने समझ लिया था कि इतरीभवन पर केवल निजी संपत्ति तथा उसके सारे परिणामों के उन्मूलन द्वारा ही पार पाया जा सकता है।

इतरीभवन पर मार्क्स के विचार उनके "विद्योहित धर्म" के विवेचन में समाहित रूप में प्रकट होते हैं। "विद्योहित धर्म" की मार्क्सवादी सङ्कल्पना ने पूँजीवादी समाज में श्रमिकों की दसावस्था का, उसके एक निश्चित धर्म में बंधे होने का, उस पर धोरे जानेवाले धर्म के परिणामस्वरूप उसके वैदिक तथा नैतिक अर्थ वर्तन का, "उसके सङ्घ के लोग" (इस पुस्तक का पृ० १०५ देखें) का समाहार किया।

मार्क्स ने जोर दिया कि धर्म के किसी विषय में समाविष्ट ऐसा धर्म, जो मूर्त हो गया है, धर्म का वस्तुकरण है।

घोर निजी शक्ति द्वारा ज्ञानित मन्त्रों में धर्म का वस्तुस्थिति
 प्रतिपादन धर्मिक को जीवन के मानकों से वंचित करता
 है, उसे अपने धर्म की वस्तु का दाग बना देता है। इनके
 धर्म का उत्पाद उसके लिए एक इतर उत्पाद बन जाता
 है। धर्म का वस्तुस्थिति धर्म का इतरोत्पन्न बन जाता है। धर्म प्रकृत
 अपने सृजनारम्भक मनस्य को गवा देती है और धर्मिक के लिए
 मार्गदर्शक नहीं रहती है। धर्मिक के पास इसके लिए कोई
 प्रेरक नहीं होने कि वह मूर्खता के निग्रहों और मार्गदर्शक
 आवश्यकताओं के अनुसार उत्पादन करे। वह अपने शरीर
 तथा मानसिक शक्ति का स्वेच्छया विकास नहीं करता;
 वह उनका निग्रह करता है, अपने तन को क्षाम देता है
 और मन को नष्ट करता है। वह पशुवत भावित्व आवश्यकताओं
 के साथ पशु की अवस्था में पहुँच जाता है और मानवजाति
 में सन्निहित लक्षणों को गवा देता है। वह अपना नहीं रह
 जाता है, बल्कि पूजा के स्वामी का हो जाता है। वह स्व
 अपनी बैडियों को बनाता है (इस पुस्तक के पृ० १०४, १०
 देखें) ।

‘१९४४ की धर्मशास्त्र तथा दर्शन संबंधी पाठ्यविषय
 में प्रस्तुत “विनियोजित धर्म” की संकल्पना पूजा द्वारा धर्म
 के धर्म के विनियोजन (appropriation) के भागी मार्ग
 सिद्धान्त की प्रारम्भिक अभिव्यक्ति, धार्मिक चलकर, विशेष
 ‘पूजा’ में, विकसित किये जानेवाले महत्वपूर्ण विचारों :
 तुरफ एक प्रारम्भिक उपागम थी।

इतरोत्पन्न की संकल्पना का व्यापक उपयोग मार्ग :
 धार्मिक शिक्षा के निरूपण की प्रारम्भिक अवस्था का विशिष्ट
 ————— कृति में इस संकल्पना का प्रयोग

औरी हद तक पूँजीवाद के धार्मिक सवधों के सार, उजरती श्रम के शोषण, को अधिक पूर्णता और अधिक स्पष्टता के साथ प्रकट करनेवाले धन्य, अधिक ठोस निष्कर्षों ने से किया। तथापि, निजी संपत्ति पर आधारित सामाजिक व्यवस्था के शोषक, अमानवीय स्वरूप और उस समाज में मेहनतकश जनसाधारण की बदहाली को दार्शनिक रूप में सामान्यीकृत व्यक्ति की तरह इसका मार्क्स की उत्तरवर्ती कृतियों में भी प्रयोग होता रहना है।

१८४४ की धर्मशास्त्र तथा दर्शन सवधी पाण्डुलिपियाँ में सन्निहित सैद्धान्तिक सामान्यीकरण पूँजीवादी उत्पादन प्रणाली का वैज्ञानिक विश्लेषण करने, उसके अतर्निहित अंतर्विरोधों का निर्धारण करने, उसकी गति के नियम का, जो पूँजीवाद को अनिवार्य विनाश की ओर, उसकी एक उत्पत्ति तथा अधिक विवेकपूर्ण सामाजिक ढाँचे से प्रतिस्थापना की तरफ ले जा रही है, अध्ययन करने का पहला प्रयास है। इसमें मार्क्स अपने इस निष्कर्ष को स्पष्ट करते हैं कि निजी संपत्ति की व्यवस्था को केवल व्यापक जनसाधारण के आतंककारी सधर्म के परिणामस्वरूप ही उलटा जा सकता है। "निजी संपत्ति के विचार का उन्मूलन करने के लिए कम्युनिज्म का विचार पूर्णतः पर्याप्त है। वास्तविक

घोर "निर्धन तथा धर्महीन मनुष्य को, जिसकी आवश्यकता
 पड़ी हो" है, अर्थात् "मरण" की तरह का
 की प्रकृति अपने-आपने समतावादी कम्युनिज्म के धार्मिक निन्द
 की आलोचना की (इस पुस्तक का पृ० १४१ देखें)

माक्स भूमि के निरी संपत्ति से सौर संपत्ति में परिवर्तित
 किये जाने और धर्म के सामूहिक रूपों के शुरू किये जाने
 के जरिये कम्युनिस्ट पुनर्निर्माण के बारे में कुछ प्रगति
 सारगर्भित टीकाएं करने हैं। किसानों के लिए हमकी प्रस्तावों
 को दंगति हुए वह लिखते हैं "जमीन पर प्रयुक्त साहचर्य
 बड़े पैमाने की भू-संपत्ति के आर्थिक सुधारों का उपयोग करना
 है। इसी तरह से साहचर्य मनुष्य के धरती के साथ अपनी
 सूत्रों को भी, अब तक संगत आधार पर, भूदासत्व, आधिपत्य
 और संपत्ति के भूखनापूर्ण रहस्यवाद द्वारा व्यवहित हुए बिना
 पुनर्स्थापित करता है, क्योंकि धरती अब खुदफरोशी का
 विषय नहीं रहती, और मुक्त धर्म और मुक्त उपभोग के
 जरिये फिर से मनुष्य की वास्तविक वैयक्तिक संपत्ति बन
 जाती है" (इस पुस्तक का पृ० ६२-६३ देखें)।

'१९४४ की अर्थशास्त्र तथा दर्शन संबंधी पाठ्यलिपियां'
 में प्रस्तुत विचारों का माक्स तथा एंगेल्स की उत्तरवर्ती कृतियों
 में और निरूपण तथा विस्तारण किया गया, विशेषकर उनकी
 सहकृतियों में, जैसे 'पवित्र परिवार, अथवा समालोचनात्मक
 आलोचना की समीक्षा', 'जर्मन विचारधारा' तथा 'कम्यु-
 निस्ट पार्टी का घोषणापत्र', जो वैज्ञानिक सर्वहारा विश्व-
 दृष्टिकोण के सैद्धांतिक आधारों के निरूपण की परिणति था।
 माक्स की पहली अर्थशास्त्रीय कृति, १९४४ की
 पाठ्यलिपियां, कई बानों के लिहाज से माक्सवादी अर्थशास्त्र
 का प्रस्थान बिंदु है, जिसका नाम 'पत्नी' है।

कार्ल मार्क्स

१८४४ की अर्थशास्त्र
तथा दर्शन संबंधी
पांडुलिपियां ^१

40881
507791

10881
- 29-691

भूमिका

॥ XXXIX ॥ * में *Deutsch-Französische Jahrbücher* में न्यायशास्त्र तथा राजनीतिशास्त्र की समीक्षा को हेगेलीय विधिमीमांसा की समीक्षा के रूप में प्रस्तुत करने की पहने ही घोषणा कर चुका हूँ।** उसे प्रकाशन के लिए तैयार करते समय केवल परिवर्तन के विशद सक्षित आलोचना का स्वयं विभिन्न विषयों की आलोचना के साथ अंतर्ग्रहण पूर्णतः अनुपयुक्त मिश्र हुआ, जो तर्क के विकास में बाधक था और अर्थग्रहण को कठिन बनाता था। इसके अन्वावा निरूप्य विषयों की बहुलता तथा विविधता को केवल मुद्रित सूत्रात्मक शैली से ही एक ही कृति में ठूँसा जा सकता था, जब कि अपनी धारी में इस तरह के सूत्रात्मक प्रस्तुतीकरण ने मनमाने वर्गीकरण की छाप पैदा की होती। इसलिए मैं विधिशास्त्र, नीतिशास्त्र, राजनीतिशास्त्र, आदि की समीक्षा को पृथक, स्वतंत्र पुस्तिकाओं की भांति प्रकाशित करूँगा, और बाद में एक विशेष कृति में पृथक भागों के अंतःसंबंध

* ये रोमन संख्याएँ पाइलिपि में स्वयं मार्क्स द्वारा दी गयी थीं। इनके बारे में विस्तार से जानने के लिए टिप्पणी १ देखें। - स०

** Karl Marks, *Contribution to the Critique of Hegel's Philosophy of Law. Introduction* - स०

को दमनकारी एक मंगल गर्भस्थ की तरह उन्हें छिपे हुए
 करने का दया बखशा, और धर्म में उस स्थिति के
 परिणामात्मक विचारों की समीक्षा करने का प्रयत्न करना।
 इसका यह तात्पर्य जावेगा कि प्रत्युत ईश्वर के सम्मुख
 धर्मशास्त्र तथा शास्त्र, सिद्धिशास्त्र, नीतिशास्त्र, नैतिक
 जीवन, आदि के बीच धर्मशास्त्र की गिंठें बड़ी तब तक
 की गयी हैं कि जहाँ तक धर्मशास्त्र इन विषयों को छू
 रहा है।

राजनीतिक धर्मशास्त्र की जानकारी रखनेवाले कुछ
 यह विश्वास दिखाना बड़ा विना ही आवश्यक है कि मेरे पूर्व
 राजनीतिक धर्मशास्त्र के निष्ठापूर्ण समालोचनात्मक प्रयत्न
 पर आधुनिक पूर्वतन अनुभववाचिक विश्लेषण में प्राप्त कि
 गये हैं।

(अनभिज्ञ समीक्षक" को, जो अपनी पूर्ण धर्म
 और बौद्धिक बगानी को सकारात्मक आलोचक के ऊपर
 "पूटोपियाई मुहावरों" की, या फिर "सर्वथा शुद्ध, सर्व
 निश्चिन, सर्वथा समालोचनात्मक आलोचना", "के
 विधिक ही नहीं, अपितु सामाजिक-पूर्णतः सामाजिक
 समाज", "सहन, पुत्रभूत जनपुत्र", "पुत्रभूत जनपुत्र
 बेनीम प्रवक्ता" जैसे मुहावरों की बीछार करके छिपाने
 कोशिश करते हैं, इस समीक्षक" को इस बात का यह
 प्रमाण अभी देना ही है कि वह अपने धर्मशास्त्रीय या
 वारिक मामलों के अलावा ऐहिक मामलों के विवेचन में
 कुछ योगदान कर सकता है।)

यह कहना अनावश्यक है कि फामीसी तथा अग्रज समाज

दिये के अलावा मैने जर्मन समाजवादी कृतियों का भी प्रयोग किया है। तथापि वाइटलिंग की रचनाओं के अलावा न विज्ञान में महत्व की एकमात्र मौलिक जर्मन कृतियों *inundzwanzig Bogen* में प्रकाशित हेस्त के निबंध^३ और *Deutsch-Französische Jahrbücher* में प्रकाशित, जहाँ ने इस कृति ['१८४४ की अर्थशास्त्र तथा दर्शन संबंधी 'इन्विषिया'] के आध्यात्मिक तत्वों को भी बहुत सामान्य रूप से दिखलाया है, एगेस्त द्वारा लिखित *Umriss zu einer Kritik der Nationalökonomie* ही है।

(इन लेखकों की कृष्णी होने के अलावा, जिन्होंने अर्थशास्त्र की तरफ समालोचनात्मक ध्यान दिया है, मयूचे तीर पर सकारात्मक आलोचना—और इसलिए राजनीतिक अर्थशास्त्र की जर्मन सकारात्मक आलोचना भी—अपनी वास्तविक संस्थापना के लिए फायरबाख की ओरों की आभारी है, *Anekdoten** में उनके *Philosophie der Zukunft* तथा *Thesen zur Reform der Philosophie* के खिलाफ—उनका जो मतकहे उपयोग किया गया है, उसके बावजूद—कुछ लोगों की शुद्ध ईर्ष्या और भौरो की सचमुच की नाराजगी ने क्षामोक्षी की एक वाकायदा साक्षिणी सी पैदा कर दी लगती है।)

सकारात्मक, मानवतावादी तथा प्रकृतवादी आलोचना का समारम्भ तिरुं फायरबाख से ही होता है। फायरबाख की रचनाएँ, जो हेगेल की *Phänomenologie* तथा *Logik* के बाद आने ली ऐसी रचनाएँ हैं, जिनमें वास्तविक सैद्धांतिक

* *Anekdoten zur neuesten deutschen Philosophie und Publicistik* — स०

की परिमीमाए भी, ताकि प्रेक्षक के और स्वयं अपने भी ध्यान को आलोचना और उसके उद्गमस्थान—हेगेलीय द्वंद्ववाद तथा समूचे तौर पर जर्मन दर्शन—के बीच निपटारा करने के अनिवार्य कार्यभार से, अर्थात् आधुनिक आलोचना को स्वयं अपनी परिमीमा तथा अपरिच्छिन्ना के ऊपर उठाने की इस अनिवार्यता से मोड़ा जा सके। लेकिन अतः जब भी स्वयं उनकी दार्शनिक पूर्वकल्पनाओं की प्रकृति के बारे में खोजें (जैसे फायरबाख की) की जाती हैं, आलोचक ईश्वरमीमाणाकार आश्रित रूप में यह प्रकट करते हैं, मानो वह स्वयं ही वह व्यक्ति है, जिसने यह किया है। यह आभास वह इन खोजों के परिणामों को लेकर और, उन्हें विकसित कर पाये बिना, उन्हें भ्रम भी दर्शन की सीमाओं में बंधे लेखकों की तरफ ज़ास्तू नारों की तरह फेंककर पैदा करते हैं। वह रहस्यात्मक ढंग में, प्रच्छन्न, द्वेषमय और सचायात्मक तरीके से, ऐसी आलोचना के विरुद्ध हेगेलीय द्वंद्ववाद के उन तत्वों को रखकर, जो इस द्वंद्ववाद की आलोचना में भ्रम भी विद्यमान नहीं हैं (जिन्हें अभी तक उनके उपयोग के लिए आलोचनात्मक रूप में उनके सामने नहीं रख दिया गया है),—ऐसे तत्वों को उनके उपयुक्त अवसर में लाने का प्रयास न करने के कारण भ्रमवा ऐसा करने के योग्य न होने के कारण, मिसाल के लिए व्यवहृतात्मक प्रमाण के सर्वत्र को हेगेलीय द्वंद्ववाद के लिए साक्ष्यिक ढंग से सकारात्मक, आत्मोद्भूत सत्य के सर्वत्र के विरुद्ध रखकर, आश्रित रूप में ऐसी खोजों पर अपनी श्रेष्ठता की भावना तक प्राप्त कर लेते हैं। कारण कि ईश्वरमीमाणाकार आलोचक को यह विलक्षण स्वाभाविक लगता है कि सभी कुछ दर्शन द्वारा ही किया जाना है, ताकि वह शुद्धता, निश्चितता,

के बाने घोर तनय अधिष्ठ झूठा बानी है, जिस ल
 निर दक्षिण का धन्यमोक्षण बाने के लिए ही बान
 शक्ति के विपुल न ही बाने के लिए धन्यमोक्षण है। निर।
 धन्यमोक्षण मजदूरी का धन्यमोक्षण है, जो एक धन्यमो
 के, धन्यमोक्षण अधिष्ठ के, निर धन्यमोक्षण है।

दूसरी किमी भी त्रिंन की धन्यमोक्षण से ही
 धन्यमोक्षण की उन्मत्ति की धन्यमोक्षणः शक्ति बनी है। धन्यमो
 मान में बहुत अधिष्ठ ही बाने, तो धन्यमोक्षण का एक धि
 धन्यमोक्षण या धन्यमोक्षण की धन्यमोक्षण में पा जाता है। इस धि
 धन्यमोक्षण का धन्यमोक्षण बाने ही धन्यमोक्षण के धन्यमोक्षण का र
 है, जैसी ही धन्यमोक्षण त्रिंन के धन्यमोक्षण की होती है। धन्यमो
 एक त्रिंन धन्यमोक्षण है धन्यमोक्षण बह कोई धन्यमोक्षण का र
 है, तो धन्यमोक्षण यह धन्यमोक्षण की ही धन्यमोक्षण है। धन्यमोक्षण
 की धन्यमोक्षण त्रिंन मान पर धन्यमोक्षण बरती है, बह धन्यमोक्षण
 धन्यमोक्षण धन्यमोक्षण की धन्यमोक्षण पर धन्यमोक्षण बरती है। धन्यमोक्षण
 मान से अधिष्ठ हो जाती है, तो धन्यमोक्षण के धन्यमोक्षण धन्यमोक्षण-धन्यमोक्षण-
 धन्यमोक्षण धन्यमोक्षण मजदूरी-धन्यमोक्षण से एक धन्यमोक्षण धन्यमोक्षण के धन्यमोक्षण
 धन्यमोक्षण किया जाता है, धन्यमोक्षण [धन्यमोक्षण] धन्यमोक्षणों [का एक धन्यमोक्षण]
 इस उपयोग से निकल आता है धन्यमोक्षण इस प्रकार धन्यमोक्षण धन्यमोक्षण
 केन्द्र-बिन्दु के रूप में स्वाभाविक धन्यमोक्षण [की तरफ] धन्यमोक्षण जाता
 है। धन्यमोक्षण (१) जहाँ धन्यमोक्षण धन्यमोक्षण धन्यमोक्षण होना है, धन्यमोक्षण
 धन्यमोक्षण के लिए धन्यमोक्षण धन्यमोक्षण को नयी धन्यमोक्षण में धन्यमोक्षण
 करना धन्यमोक्षण धन्यमोक्षण होना है, (२) धन्यमोक्षण के धन्यमोक्षण
 में धन्यमोक्षण धन्यमोक्षण धन्यमोक्षण के कारण धन्यमोक्षण धन्यमोक्षण धन्यमोक्षण
 होती है।

इस प्रकार धन्यमोक्षण धन्यमोक्षण धन्यमोक्षण के स्वाभाविक धन्यमोक्षण की धन्यमोक्षण
 धन्यमोक्षण में यह धन्यमोक्षण ही है कि धन्यमोक्षण सबसे अधिष्ठ धन्यमोक्षण

निवार्यतः हानि उठानी होती है। और यह बस पूँजीपति अपनी पूँजी को दूसरी दिशा में निवेशित करने की क्षमता है कि जो धर्मिक को, जो धर्म की किसी विशेष शाखा बचा होता है, या तो साधनहीन बना देती है, या उसे न पूँजीपति की हर मांग के आगे झुकने को मजबूर करती है।

॥ 11, 1 ॥ बाजार दाम में आकस्मिक और सहसा उतार-ढाव दाम के उस भाग की तुलना में, जो लाभ तथा मजदूरी वियोजित होता है, किराये (लगान) पर कम आघात पड़ते हैं, लेकिन लाभ पर वे मजदूरी की अपेक्षा कम आघात पड़ते हैं। अधिकांश मामलों में अगर एक मजदूरी बढ़ती है, तो एक स्थिर रहती है और एक गिरती है।

धर्मिक का तब लाभान्वित होना अनिवार्य नहीं है कि जब पूँजीपति को लाभ होता है, लेकिन जब पूँजीपति हानि उठाता है, तो धर्मिक अनिवार्यतः हानि उठाता है। उदाहरणतः अगर पूँजीपति बाजार दाम को किसी उत्पादन भयवा व्यापार रहस्य की बढ़ोतरी, या एकाधिकार भयवा अपनी जमीन अनुबूल अवस्थिति की बढ़ोतरी स्वाभाविक दाम से ऊँचा रखना है, तो मजदूर को कोई लाभ नहीं होता।

इसके अलावा धर्म के दाम जिसों के दामों की अपेक्षा नहीं अधिक स्थिर होते हैं। बहुधा वे व्युत्क्रमानुपात में रहते हैं। महंगाई के साल में मजदूरी मांग में गिरावट के कारण गिर जाती है, लेकिन जिसों के दाम में बढ़ाव के कारण बढ़ जाती है—और इस प्रकार संतुलित हो जाती है। बहरहाल, बहुत से मजदूर रोटी से वंचित हो जाते हैं। सस्ते सालों में मांग में बढ़ाव के कारण मजदूरी बढ़ती है, अगर

पटकर क्षति नहीं उठानी पड़ती, जितनी अधिक धन को उठानी पड़ती है”।*

॥ III, 1। (२) अब ऐसा समाज ले लेते हैं, जिसमें संपदा बढ़ रही है। यही अधिक के एकमात्र अनुकूल भवस्था है। यहाँ पूँजीपतियों के बीच प्रतिद्विंदा शुरू हो जाती है। अधिक के लिए माग उनकी पूर्ति से अधिक हो जाती है। लेकिन :

पहली बात तो यही है कि मजदूरी के बढ़ने से मजदूरी में कार्याधिक्य पैदा हो जाता है। वे जितना ही अधिक कमाना चाहते हैं, उन्हें अपने समय का उतना ही अधिक बलिदान करना होता है और लोभ के माधनार्थ अपनी सारी स्वतंत्रता को पूरी तरह से गवाते हुए दाम धम करना होता है। इसके परिणामस्वरूप वे अपनी जिदगियों को घटाते हैं। जीवनावधि का यह लघुकरण समूचे तौर पर श्रमजीवी वर्ग के लिए एक अनुकूल घटना है, क्योंकि इसके परिणामस्वरूप श्रम की निरंतर नयी पूर्ति आवश्यक हो जाती है। इस वर्ग को इसके लिए हमेशा अपने एक भाग का बलिदान करना पड़ता है कि वह पूरी तरह से नष्ट न हो जाये।

इसके अलावा कोई समाज अपने को बढ़ती संपदा की हावत में कब पाता है? जब देश की पूँजियाँ और धन बढ़ती होती हैं। लेकिन यह सिर्फ़ तब ही संभव है -

(क) बहुत श्रम के सचय के परिणामस्वरूप, क्योंकि पूँजी सचिन श्रम ही है; फलतः हम तथ्य के परिणामस्वरूप कि अधिक के अधिकाधिक उत्पाद उमते छीन लिये जाते हैं,

* Adam Smith, *Wealth of Nations*, Vol. I, p. 230 (Garnier, L. II, p. 162) - सं०

कि स्वयं उगाया श्रम अधिकाधिक मात्रा में उनमें हल
 हमारे व्यक्ति की संपत्ति की तरह में घाता है और यह कि
 उगने जीवन तथा कार्यकलाप के माध्यम अधिकाधिक पूँजी
 के हाथों में संचयित होने जाते हैं।

(ख) पूँजी संचय श्रम विभाजन को बढ़ाता है और
 श्रम विभाजन मजदूरों की मर्यादा को बढ़ाता है। विनोद,
 श्रमिकों की संख्या में वृद्धि श्रम विभाजन को बढ़ाती है,
 जिस प्रकार श्रम विभाजन पूँजी संचय को बढ़ाता है। एक
 और इस श्रम विभाजन और दूसरी ओर पूँजी संचय के साथ-
 साथ श्रमिक अधिकाधिक अनन्यतः श्रम पर, और वह भी
 एक विशेष, अत्यंत एकांगी, यत्नवत श्रम पर निर्भर होना
 जाता है। जिस प्रकार इस तरह में वह आत्मिक तथा दैहिक
 रूप में घटती होकर यत्न की अवस्था में आ जाता है और
 मनुष्य होने से एक अमूर्त कार्यकलाप और एक उदर बन
 जाता है, उसी प्रकार वह बाजार दाम में हर उतार-चढ़ाव
 पर, पूँजी के अनुप्रयोग पर, और धनिकों की मौजों पर
 निरंतर अधिक निर्भर होता जाता है। ऐसे ही ॥ IV, ॥ पूँजी
 काम पर आधित लोगों के वर्ग में वृद्धि श्रमिकों के बीच
 प्रतिद्वंद्विता को प्रखर करती है और इस प्रकार उनके दाम
 को नीचा करती है। कारखाना प्रणाली में यह स्थिति अपने
 चरम पर पहुँच जाती है।

(ग) अधिकाधिक समृद्ध होने समाज में केवल धनियों
 में सबसे धनी ही द्रव्य के व्यापार पर जी सकते हैं। बाकी
 हर किसी को अपनी पूँजी से कोई व्यवसाय करना होता है,
 या उसे व्यापार में जीविम में घातना होता है। फलस्वरूप
 पूँजीपतियों के बीच प्रतिद्वंद्विता अधिक प्रखर हो जाती है।
 बड़े पूँजीपति छोटे पूँजीपतियों

तो नष्ट कर देते हैं और भूतपूर्व पूजीपतियों का एक हिस्सा गिरकर अमजीवी वर्ग में आ जाता है, जिसे इस पूर्ति के परिणामस्वरूप फिर किसी हद तक मजदूरी के गिरने को भेचना पड़ता है और वह थोड़े से बड़े पूजीपतियों की ओर भी अधिक निर्भरता में आ जाता है। पूजीपतियों की सख्या के घट जाने के कारण मजदूरी के बारे में उनकी प्रतिद्विष्टता अब कदाचित्त ही बनी रहती है, और अमिकों की सख्या के बढ़ जाने के कारण उनकी आपस में प्रतिद्विष्टता और भी अधिक प्रखर, अस्वाभाविक और प्रचंड हो जाती है। फलन अमजीवी वर्ग का एक हिस्सा उसी प्रकार अनिवार्यन भिखमगी या भुखमरी में पड़ जाता है, जिस प्रकार मजदूरों ने पूजीपतियों का एक हिस्सा अमजीवी वर्ग में आ जाना है।

अन. समाज की मजदूर के लिए सचमे अनुकूल अवस्था में भी मजदूर के लिए अदरिहार्थ परिणाम कार्याधिक्य और असाभाविक मृत्यु, साथ एक मशीन में, पूजी के, जो उनके ऊपर और उनके खिलाफ सततताक तौर पर इकट्ठा होती जाती है, कीन दाम में अवनति, अधिक प्रतिद्विष्टता और अमिकों के एक हिस्से के लिए भुखमरी या भिखमगी ही होता है।

॥ V. 1 ॥ मजदूरी का चढ़ना अमिक में पूजीपति जैसा घनी बनने का उन्माद पैदा कर देता है, मगर इसे वह सिर्फ अपने दिमाग और बदन की कुरखानी करके ही तुष्ट कर सकता है। मजदूरी के चढ़ने में पूजी सचय पूर्वकल्पित और आवश्यक है और इस प्रकार वह अम के उत्पाद की अमिक के विरुद्ध उनके मश-सदा प्रतिकूल थीज की तरह खड़ा कर देता है। इसी प्रकार अम विभाजन अपने माय सिर्फ मनुष्यो ही नहीं, बल्कि मशीनो की भी प्रतिद्विष्टता को लाकर अमिक

को हमें जहाँ की ओर लक्षित करना है। यदि देश
 गिरकर मशीन के लक्ष पर आ गया है, क्योंकि जहाँ
 उनके मशीन के लक्ष पर प्रतिष्ठित की तरह आ जाती है। इस
 यदि पूँजी का लक्ष्य उद्योग के परिमाण को और इस प्रकार
 धर्मियों की मशीन को बढ़ाना है, इसलिए उनके लक्ष्य में
 ही परिमाण का उद्योग अधिक परिमाण में उत्पन्न देश का
 है, जिसने परिणामस्वरूप अत्युत्पादन होता है और इस प्रकार
 उनका धन या तो मजदूरों के एक बड़े हिस्से को बेरोज
 करने के साथ या उनकी मजदूरी को एकदम से हटाने
 घटाने के साथ होता है।

ये मजदूर के लिए समाज की सबसे अनुकूल अवस्था
 सर्वाधिक बढ़ती, उन्नत होती मशीन की अवस्था—के लिए
 है।

तथापि, अन्ततः वृद्धि की यह अवस्था देर-घबेर अपने च
 पर पहुँच जाती है। अन्ततः मजदूर की स्थिति अब क्या

(३) “एक ऐसे देश में, जिसने धन-संपत्ति
 वह पूर्ण मात्रा प्राप्त कर ली थी [..], अथ
 मजदूरी और पूँजी पर लाभ, दोनों ही सम्भवतः
 नीचे होंगे [..], रोजगार के लिए प्रतिष्ठित
 अनिवार्यतः इतनी अधिक होगी कि अथ की मज
 को घटाकर इतना कर दे कि वह धर्मियों की स
 को बनाये रखने के लिए मुश्किल से ही बाज़ी
 और चूँकि देश पहले ही पूर्णतः आबाद है, इस
 यह मशीन कभी नहीं बढ़ सकती।” *

* Adam Smith, *Wealth of Nations*, Vol I, p 81 (Gar
 t I, p 193) — स०

माधिय को काज कबलित हो जाना होगा।

इस प्रकार समाज की हान्यमान अवस्था में — मजदूर की बढ़ती हुई तगहानी, उत्कर्षमान अवस्था में — पैचीदमियों के साथ तगहानी, और समाज की पूर्णतः विविधित अवस्था में — स्थायी तगहानी।

॥ VI, 1 ॥ लेकिन, चूँकि स्मिथ के अनुसार वह समाज सुखी नहीं होता, जिसका अधिकांश विपदाग्रस्त होना है* — वैसे ही समाज की समृद्धतम अवस्था भी अधिकांश को इस विपदा की तरफ़ ही ले जाती है — और चूँकि आर्थिक व्यवस्था* (और सामान्यरूपेण निजी हित पर आधारित समाज) इस समृद्धतम अवस्था की ओर ले जाती है, इसलिए निष्कर्ष यह निकलता है कि आर्थिक व्यवस्था का नश्य समाज का दुश्मन है।

मजदूर और पूँजीपति के बीच संघर्ष के बारे में हमें यह जोड़ देना चाहिये कि पूँजीपति को मजदूरी के बढ़ने का थम काज की मात्रा के बढ़ने से पूरे से भी अधिक प्रतिकरण मिल जाता है, और यह भी कि चढ़ती मजदूरी और पूँजी पर चढ़ते व्याज की क्रिया जिसो के दाम पर क्रमशः साधारण और चक्रवृद्धि व्याज की तरह होती है।

आइये, अपने को अब पूरी तरह से राजनीतिक अर्थशास्त्री के दृष्टिकोण पर ले आये और मजदूरों के नैदानिक तथा व्यावहारिक दावों की तुलना करने में उसका अनुगमन करें।

यह हमें बतलाता है कि मूलतः और निश्चिततः थम का सारा उत्पाद मजदूर का ही होता है। लेकिन साथ ही यह हमें बतलाता है कि वास्तव में मजदूर जो पाता है, वह

* पूर्वोक्त, पृ० ७० (Garnier, t. I, pp 159-160) — सं०

ना एकमात्र अपरिवर्तनीय दाम होता है, फिर भी धर्म के दाम से अधिक साधोनिग, उदार-चराचर के लिए बनावत और कुछ नहीं होता।

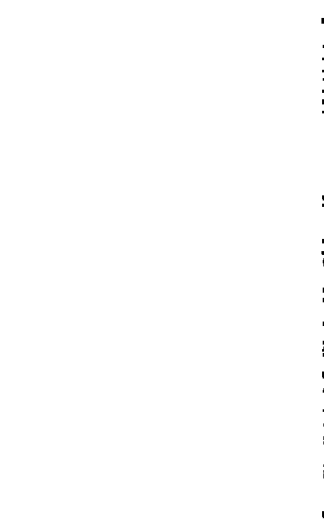
यद्यपि धर्म विभाजन धर्म की उत्पादक शक्ति को उत्पन्न करता है और समाज की संपदा तथा परिष्कृति को बढ़ाता है, फिर भी वह मजदूर को निरुपाय बनाता है और उसे एक मशीन में बदल देता है। यद्यपि धर्म पूजा के मन्त्र और उनके साथ समाज को बढ़ती समृद्धि को संभव बनाता है, फिर भी वह मजदूर को पूजीपति पर और भी अधिक आश्रित बनाता है, उसे अभूतपूर्व प्रचरता की प्रतिद्विधा में ले जाता है और उसके बाद ऐसी ही मदी लाकर उसे अत्युत्पादन की अधाधुध दौड़ में धकेलता है।

यद्यपि राजनीतिक अर्थशास्त्रियों के अनुसार मजदूर का हित कभी समाज के हित के मुकाबले पर नहीं आता, समाज सदा और अनिवार्यतः मजदूर के हित के मुकाबले पर खड़ा होता है।

राजनीतिक अर्थशास्त्रियों के अनुसार मजदूर का हित कभी समाज के हित के विरुद्ध नहीं होता (१) क्योंकि बढ़ती मजदूरी ना ऊपर वर्णित अन्य परिणामों के साथ धर्म काल की मात्रा में लघुकरण द्वारा पूर्णाधिक प्रतिकरण हो जाता है; और (२) क्योंकि समाज की सापेक्षता में सारा सकल उत्पाद निरन्तर उत्पाद होता है, और निरन्तर उत्पाद का केवल निम्नी व्यक्ति की सापेक्षता में ही कोई महत्व होता है।

लेकिन यह बात कि धर्म स्वयं, केवल वर्तमान अवस्थाओं के अंतर्गत ही नहीं, बल्कि जहां तक कि सामान्य रूप में उसका ध्येय संपदा की वृद्धि मात्र होता है—मैं कहता हूँ कि यह बात कि धर्म स्वयं हानिकार और विनाशक होता

1. लक्ष, जिसमें एक घण्टी की कीमत है, जो कि
 और बहुत अधिक है, जो कि
 का अनुमान लगाना काफी अधिक है, जो कि
 मिला है और उसका किताब बनाने का। जो कि
 इसी प्रकार का कार्य है कि जो यह मराने
 वसमान घण्टी में यह भी मराने का कार्य है
 इसीलिए घण्टी यह मराने का मराने का कार्य है
 गाना गाना है, जिसका यह, जिसका यह
 पचास लाख यह मराने का, जो कि इसी का
 में किमी और मराने की घण्टी की घण्टी की
 है, जो कि बहुत दाना घण्टी में यह में यह
 मराने यह है। किताब घण्टी की घण्टी में यह
 मराने में किताब एक हजार मराने हो, जो कि
 दस लाख, जो ६,६६,००० पचास लाख यह
 बनाने बहुत हाथ में नहीं है—और घण्टी
 माथ ही जीवनावश्यक वस्तुओं के दाम बढ़ने
 तो वे बहुत हाथ में है। ऐसे सप्ताही घण्टी
 द्वारा लगे घण्टी के सबसे बड़े घण्टी के
 में अपने को घण्टी देने की कोशिश करते हैं।
 घण्टी मराने का परिमाण मराने की घण्टी
 भाकलन में केवल एक बार है, क्योंकि इस
 के मापन के लिए उसकी दीर्घता की सुनिश्चितता
 ध्यान में रखना आवश्यक है, जो अपने विराम
 उतार-चढ़ावों और गतिहीनता के दोषों की तयारी
 मुक्त प्रतिष्ठिता की धराजकता में प्रकट प्रकाश
 है। अन्तिम बात, पहले और यह प्रचलित कार्य
 को ध्यान में रखना आवश्यक है। और घण्टी
 मराने के लिए इसे, अधिमपतियों के मुनाफे
 लिए उन्माद के परिणामस्वरूप, बढ़ाकर ॥ IX,
 पिछले कोई पचीस साल के दौरान—कहने का मत
 यह कि ठीक धम बचाऊ मशीनों के प्रचलन में लाये



गैर १: अपनी बात तो यह है कि पूँजी का तब
 पूर्णतः नियोजित पूँजी के मूल्य डाट निर्जित
 होता है, यद्यपि भिन्न-भिन्न पूँजियों से संबद्ध निर्देश
 तथा निवेशन का धर्म उतना ही हो सकता है। इन
 धर्मों के बड़े नामों में यह सारा धर्म निम्न दो
 मशीन के गुणों में रखा जा सकता है, जिनके बीच
 का १। 1। 2। उन पूँजी के साथ कोई नियमित अनुपात
 नहीं होता है, जिससे प्रत्येक का वह मशीन का
 है। और यद्यपि स्वामी का धर्म यहाँ लगभग नहीं
 के बराबर रह जाता है, फिर भी वह अपनी पूँजी
 के अनुपात में ही लाभों की मांग करता है। (ऐडम
 स्मिथ, पूर्वोक्त, खंड १, पृ० ४३ [Garnier, t. I,
 pp. 97-98].)¹²

पूँजीपति लाभ और पूँजी के बीच इस अनुपात की मांग
 क्यों करता है?

उसका मजदूरों को नियोजित करने में तब तक
 कोई स्वार्थ नहीं होगा, जब तक कि वह उनके काम
 की विधि से अपने द्वारा मजदूरों के रूप में अग्रसारित
 (advanced) स्टॉक की प्रतिस्थापना के लिए आवश्यक
 से अधिक कुछ पाने की अपेक्षा न करता हो और
 उसका छोटे स्टॉक के बजाय बड़े स्टॉक का नियोजन
 करने में तब तक कोई स्वार्थ नहीं होगा, जब तक कि
 उसके लाभों का उसके स्टॉक के परिमाण के साथ
 कोई अनुपात न हो। (ऐडम स्मिथ, पूर्वोक्त, खंड
 १, पृ० ४२ [Garnier, t. I, pp. 96-97])

इस प्रकार पूँजीपति एक तो मजदूरों पर, और दूसरे
 अपने द्वारा अग्रसारित कच्ची सामग्री पर लाभ बनाता है।
 अतः लाभ का पूँजी के साथ क्या अनुपात होता है?

माामन प्रतिइति के उन सारे मुनामो के अनाम
जिनका पूजीपति इस प्रसंग में उपयोग कर सकता है, व
बाजार दाम को बिनाकुल उचित तरीको से भी स्वाभाविक
दाम के ऊपर रख सकता है।

एक तो यही कि अगर बाजार उन लोगों से
जो उसकी पूर्ति करते हैं, बहुत दूरी पर है, तो
व्यापार में रहस्य रखकर, अर्थात् दाम में परिवर्तन
को, स्वाभाविक स्तर से उनके चढ़ने को, छिपाकर।
इस संयोजन का यह प्रभाव होता है कि दूसरे पूजीपति

इस प्रकार मानव धर्म द्वारा प्रकृति के उत्पादों को प्रकृति के विनिर्मित उत्पादों में परिवर्तित करने में ही मनुष्य प्रकृति धर्म की मददगार की भूमिका, बल्कि प्राकृतिक रूप में मानव प्रकृति निवेशकों की भूमिका को, और प्राकृतिक रूप में पूर्ववर्ती प्रकृति की तुलना में प्रत्येक उत्पादकों प्रकृति के प्रकार को बढ़ाती है।

धर्म विभाजन से प्रकृतिपति जो गठन करने हासिल करता है, उनके बारे में अधिक और जाने सम्पन्न बना जायेगा।

यह दुहरे तौर पर कायदा उठाता है—एक तो धर्म विभाजन द्वारा; और दूसरे, सामान्य रूप में, मानव धर्म नैसर्गिक उत्पाद का जो मुखार करता है, उसके द्वारा। किसी

पृथिवी के निवासीकी की संस्कारों और परिणामों का सम को सभी सबसे महत्त्वपूर्ण विषयों का सिद्ध तथा निश्चित बननी है, और इन सभी संस्कारों का परियोजनाओं द्वारा प्रस्तुत मध्य साम हो है। और लाभ हर विरोध और मजदूरी की तरह से बना की समृद्धि के साथ नहीं बननी और धनार्थ के दर गिरती नहीं है। इसके विपरीत वह सामाजिक रूप में सभी देशों में नीची और निर्धन देशों में ऊंची है, है, और उन देशों में सदा उच्चतम होती है, के विनाश की और तीव्रतम गति में जा रहे होते हैं। इन समाज के इस वर्ग के हित का समाज के सामान्य हित के साथ बड़ी संबंध नहीं होना, जो अन्य दोनो के हित का होता है। व्यापार व्यवसाय उद्योगों की किसी विशेष शाखा में बारबार करनेवालों का विशेष हित हमेशा आम लोगों के हितों से कुछ बातों में भिन्न, और बहुधा प्रचंड विरोध तक में होता है। बाजार को विस्तृत करना और विशेषताओं की प्रति-इच्छिता को सीमित करना हमेशा व्यापारी का हित होता है। यह ऐसे लोगों का वर्ग है, विनाश

पुत्रिया व विद्याशक्तों की योग्यता और योग्यता की मज्जा बढ़ाने का लक्ष्य विद्यापीठों का लक्ष्य निर्धारण का लक्ष्य है, और इन मज्जा योग्यता विद्याशक्तों द्वारा प्राप्त करने का लक्ष्य है। साथ ही विद्यापीठों और विद्यापीठों की लक्ष्य में की मज्जा के साथ नहीं बढ़ती और विद्यापीठों के लक्ष्य नहीं है। हमने विद्यापीठ वह स्वाध्याय में अपनी देशों में जोड़ी और निर्धारण देशों में उन्नी है, और इन देशों में लक्ष्य उन्नत होती है। विद्यापीठ की और लक्ष्यता प्रति से जा रहे होते हैं। समग्रता के लक्ष्य में के लिए का समग्रता के लक्ष्य



मान घटता जाता है। अतएव, जो सबसे पहले नुकसान उठाता है, वह छोटा पूँजीपति है।

इसके अलावा पूँजीपतियों की वृद्धि और पूँजी निवेशों की बढ़ी सख्या देश में बढ़ती हुई समृद्धि की अवस्था की अपेक्षा करती है।

“ऐसे देश में, जिनमें घन-संपत्ति का अपना पूर्ण सावित्य प्राप्त कर लिया है, [] शुद्ध लाभ की साधारण दर बहुत कम होगी, इसलिए उसमें जो सामान्य [बाजार] व्याज दर दी जा सकती है, वह इतनी नीची होगी कि बहुत ही कमजानों के अलावा और किसी के लिए भी अपने घन : राज पर जीना असंभव कर देगी। मध्यम समृद्धि [] सभी लोगों को स्वयं अपने स्टॉकों के नि : की व्यवस्था करने को मजबूर होना पड़ेगा। य : आवश्यक होगा कि लगभग हर ही आदमी व्यवसाय : नेवाना आदमी हो, या किसी प्रकार के व्यापार में : हो।” (ऐडम स्मिथ, पूर्वोक्त, खंड १, पृ० २६ jarner, t l. pp. 196-197)।”

राजनीतिक अर्थशास्त्र के अन्तर को सबसे प्रिय स्थिति यही है।

“घन पूँजी तथा धन के बीच अनुपात ही सब कहीं उद्यमशीलता तथा निष्क्रियता के बीच अनुपात

“इस पैराग्राफ के बाद मार्क्स ने इस वाक्य को काट दिया था : “पूँजीपतियों व्याज पर जितना ही कम उधार दी जाती है और वे जितना ही अधिक उधार लेते हैं, उधार के ब्याज में घटती जाती है, पूँजीपतियों के बीच प्रतिस्पर्धा करना ही अधिक प्रबल होती जाती है।”

का नियमन करना प्रतीत होता है; जहाँ वही पूँजी का प्रभुत्व होता है, वहाँ उद्यमशीलता भविष्य की होती है, जहाँ वही धन का प्राधान्य होता है वहाँ निष्पक्षता अभिभावी होती है।" (ऐडम स्मिथ पूर्वोक्त, खंड १, पृ० ३०१ | Garnier, t. II, p 325)

इसलिए वही हुई प्रतिद्विष्टता की इस अवस्था से पूँजी उपयोग के बारे में क्या बान बही जा सकती है?

"जैसे-जैसे स्टॉक बढ़ता है, व्याज पर उधार जानेवाले स्टॉक का परिमाण धीरे-धीरे घटता जाता है। जैसे-जैसे व्याज पर उधार दिये जाते स्टॉक का परिमाण बढ़ता है, व्याज . . घटता जाता है।" (१) क्योंकि पूँजी का बाजार दाम और पर उनके परिमाण के बढ़ने के साथ-साथ गिर जाता है और (२) क्योंकि किसी भी देश पूँजियों की वृद्धि के साथ "देश के भीतर किसी पूँजी के उपयोग का कोई लाभदायी तरीका धीरे-धीरे अधिकाधिक कठिन होता जाता है।" सामान्यरूप विभिन्न पूँजियों के बीच प्रतिद्विष्टता हो जाती है, जिसमें एक पूँजी का स्वामी उस व्यवसाय का स्वामित्व पाने का प्रयास करता है, जो उसके अधिकार में होता है। लेकिन अधिकांश अवसर पर वह इस दूसरे व्यक्ति को इस व्यवसाय से निम्नवर्ग लोगों की अधिक उचित शर्तें देने के और निम्नवर्गों से घटने बाहर करने की भाषा नहीं कर पाता है। उसे न सिर्फ़ जिसमें वह कारखाना करता है, कुछ सस्ता ही बेचना पड़ेगा, बल्कि उसे बेचने के लिए कभी-कभी ज्यादा महंगा भी खरीदना होगा। उत्पादक श्रम की मांग, उसके घनुरक्षण के निमित्त निधियों की वृद्धि द्वारा, प्रति दिन अधिकांश

राखे * से व्यवसायियों में परिणत कर देता है, तो इस विपरीत व्यावसायिक पूँजी में वृद्धि और तद्वर्धित न्यूनता लाभ व्याज दर में उतार लाते हैं।

“किसी पूँजी के उपयोग से जो लाभ बनाये जा सकते हैं, जब वे [.] घटने हैं [...], तो उसके उपयोग के लिए जो दाम दिया जा सकता है [...] उसे उनके साथ अनिवार्यतः घट जाना चाहिये।” (ऐडम स्मिथ, पूर्वोक्त, खंड १, पृ० ३१६ [Garnier, t II, p 359])

“जैसे-जैसे धन, उद्योगों और भाड़ादों में वृद्धि हुई है, व्याज घट गया है”, और परिणामस्वरूप पूँजीपतियों के लाभ भी घट गये हैं, “इन [लाभों] के घट जाने के बाद स्टॉक सिर्फ बढ़ता ही नहीं रह सकता है, बल्कि पहले की वनिस्वत कहीं तेजी के साथ बढ़ता रह सकता है। [] बड़ा स्टॉक, चाहे छोटे लाभों के साथ, आम तौर पर बड़े लाभों के साथ छोटे स्टॉक की अपेक्षा तेजी से बढ़ता है। कहावत है कि धन धन बनाता है।” (पूर्वोक्त, खंड १, पृ० ८३ [Garnier, t I, p 189])

अतः जब इस बड़ी पूँजी का छोटे लाभों के साथ छोटी पूँजियों द्वारा विरोध किया जाता है, जैसे कि प्रचुर प्रतिद्विष्टता की पूर्वकल्पित अवस्था के अंतर्गत है, तो वह उन्हें पूर्णतः ध्वस्त कर देती है।

इस प्रतिद्विष्टता का अनिवार्य परिणाम जिमों का सामान्यरूपेण गुणह्रास, मिलावट, जाली उत्पादन और सार्विक दूषण है, जो बड़े शहरों में प्रत्यक्ष है।

एक प्रकार का ही होता है। वह स्थानीय पूँजी का एक
 पूँजी का मध्यम छोटे पूँजीपति की स्तरीय को पूँजीपति के
 बड़े अधिक धनवान् होता है। बहुत छोटे पैमाने को पूँजी
 में बहुत बड़े पैमाने को बिना सीमित स्थानीय पूँजी को
 धारण करने होता है। वह मध्यम होता है। उनको अपने
 पूँजी स्तर में अधिक छोटे कुछ नहीं होता। बड़े पैमाने
 का माध्यमात्मक उनकी आवश्यकता के आधार के अनुसार में
 नहीं जाता। इसी प्रकार छोटे पूँजीपति की तुलना में वह
 पूँजीपति बिना मात्र का उपयोग करता है, उनका मतलब
 उनके लिए स्थायी पूँजी में—अर्थात् उनके काम हमेशा बिना
 नकद इन्फ्लेक्शन चाहिये, उनकी मात्रा में—छोटे भी अधिक
 बचन है। अतः यह स्पष्ट है कि जहाँ औद्योगिक धन बहुत
 ऊँचे स्तर पर पहुँच गया है, और इसलिए जहाँ मध्यम
 सारा शारीरिक धन कारखाना धन बन गया है, छोटे
 पूँजीपति की सारी पूँजी उसे आवश्यक स्थायी पूँजी तक मुहैया
 करने के लिए काफी नहीं होती। On sait que les tra-
 vaux de la grande culture n'occupent habituelle-
 ment qu'un petit nombre de bras *

* जैसे कि सुविदित है, बड़े पैमाने की कृषि धाम तोर
 पर छोटे से लोगों के लिए ही काम मुहैया करती है।—स०

६५१५ नं० ११/१२ की हानि दर्ज
 है, और धारा ६ (ग) के अनुसार निर्दिष्ट हानि
 की उपाय हो पाया, बिगने वि० १९१६ में से ११
 शिफ्ट दिवस जाते थे, पर १ शिफ्ट और १० से
 म हो जाती है। औद्योगिक उत्पादों का वस्त्र सम्पत्ति
 इस में सारा और बिदेस में मशी, दोनों का प्रभाव
 बताया है, और इसके कारण न केवल यही कि दो
 शिफ्ट में मशी उद्योग में मशीनों के प्रचलन के का
 मचदूरी की मर्यादा पड़ी नहीं है, बल्कि बाकीन हमार है
 मशीन पर बहुत साध्य हो गयी है। [XII, 2] यहाँ तक औद्योगिक
 उपकरणों और मचदूरी की धातु की बात है, बाग्यन
 मातृता के बीच मशीन प्रतिष्ठिता का परिणाम उन
 द्वारा प्रदत्त उत्पादों के परिमाण की सापेक्षता में उन
 सामों का समिवायन गिरना रहा है। १९२०-१९३१
 के वर्षों में मैनेज्मन्ट के कारखानेदारों का मूली कर्तव्य
 के एक पान पर गवस्त लाभ ६ शिफ्ट १ १/२ पैस
 से गिरकर १ शिफ्ट ६ पैस हो गया। लेकिन इस
 नुकसान को पूरा करने के लिए उत्पादन का परिमाण
 इसके अनुरूप ही बढ़ा दिया गया है। इसका नतीजा
 यह है कि उद्योग की मूल्य-मूल्य शाखाएँ किसी हद
 तक * अत्युत्पादन का अनुभव करती हैं, और यह कि

* श्रुति ने "समय-समय पर" (zeitweise) का
 प्रयोग किया है, न कि "किसी हद तक" (tellweise)
 का। - स०

“ २०,००० पाउंड की पूरी रखनेवाले कारखाने के लिए, जिसका मुनाफा २,००० पाउंड प्रति वर्ष हो, यह बिलकुल ही महत्वहीन बात होगी कि उनसे पूरी तो लोगों को नियोजित करनी है या हथार की? क्या राष्ट्र का सामाजिक हित ऐसा ही नहीं होगा? अगर उसकी निम्न सामाजिक भाव, उसका हित और लाभ उनसे ही हो, तो इसका कोई महत्व नहीं, कि राष्ट्र में १०० लाख निवासी हैं या १२० लाख।”

[t. II, pp 194, 195] “ वस्तुतः, ” श्री सीमोरो कहते हैं (*Nouveaux principes d'économie politique*, t II, p 331), “ इसके पलायन और कुछ बाधा करने को नहीं रहता कि सम्राट, राष्ट्र पर बिलकुल सत्ते पर रहने हुए, लगातार एक जैक (भराल) चलाकर इंग्लैंड का सारा काम कसो से करता रहे। ” 14

“ मालिक, जो मजदूर के धम को इतने नीचे दाम पर खरीदता है कि वह मजदूर की सबसे जरूरी आवश्यकताओं के लिए भी मुश्किल से काफी होता है, न मजदूरी की अपर्याप्तता के लिए उत्तरदायी है और न धम की अत्यधिक दीर्घता के लिए उसे स्वयं उस नियम के भागे बनना होता है, जिसे वह लागू करता है। .. निर्धनता इतना लोगों द्वारा नहीं

उनी अनुमान में अधिकाधिक विभाजित हो सकता है, जिनमें स्टॉक का पट्टे अधिकाधिक मंचरत होता है। उन ही माता द्वारा सामर्थियों की जिनकी मात्रा को उत्पादन में लाया जा सकता है, वह धन के अधिकाधिक विभाजित होने जाने के साथ बहुत अनुमान में बांटी जाती है, और प्रत्येक कामगार की क्रियाओं के जने-जने अधिक गरम क्रियाओं में परिणत होने जाने के साथ इन क्रियाओं की सुगन्ध तथा मशिन करने के लिए विशेष प्रकार की नवी मशीनें आविष्कृत होती जाती हैं। यह धन विभाजन के घाते जाने के साथ उनमें ही कामगारों की मनुष्य काम प्रदान करने के लिए रमद के उन ही स्टॉक (भंडार), और कम विरहित व्यवस्थाओं में जिनका आवश्यक होता, सामर्थियों तथा उपकरणों के उगने अधिक बड़े भंडार को पहने मंचित करना होगा। व्यवसाय की प्रत्येक शाखा में कामगारों की मध्यम उस शाखा में धन विभाजन के साथ घाम तौर पर बढ़ती है, मयवा यों कहिये कि उनकी मध्यम में वृद्धि ही उन्हें अपने भारों पर तरह से बर्गोड़ तथा उपविभाजित करने में समर्थ बनाती है।" (ऐडम स्मिथ, यूबॉल, छंड १, पृ० २४१-२४२ [Garnier, t II, pp 193-194])

"चूंकि धन की उत्पादन शक्तियों में इस भारी सुधार को जारी रखने के लिए स्टॉक का मंचर पहने आवश्यक है, इसलिए यह सचय स्वाभाविकतया इस सुधार की तरफ से जाता है। जो आदमी अपने स्टॉक से धन को नियोजित करता है, वह अनिवार्यतः उसका इस तरह से नियोजन करना चाहता है कि जिनसे काम की यथासंभव बड़ी मात्रा पैदा की जा सके। अतः वह अपने कामगारों के बीच काम का सबसे उपयुक्त वितरण करने और उन्हें सबसे अच्छी मशीनें

मुहैया करने, दोनों का प्रयास करता है [...]। इन दोनों ही बातों में उनकी क्षमताएं ॥ XV, 2 ॥ सामान्यतया उसके स्टॉक के परिमाण के, अथवा जिन लोगों को वह नियोजित कर सकता है, उनकी संख्या के अनुपात में होती हैं। इसलिए स्टॉक की वृद्धि के साथ न बेचन प्रत्येक देश में उद्योग का परिमाण ही बढ़ता है, जो उसे नियोजित करता है, बल्कि, इस वृद्धि के परिणाम-स्वरूप, उद्योग का उतना ही परिमाण कार्य का वही बड़ा परिमाण उत्पन्न करता है।" (ऐडम स्मिथ, पूर्वोक्त, खंड १, पृ० २४२ ? [Garnier, t II, pp. 194-195])

परिणामतः अत्युत्पादन।

" . उद्योग और व्यापार में अधिक नानासम्य और अधिक नानाविध मानविक तथा नैसर्गिक शक्तियों के अधिक बड़े पैमाने के उद्यमों में सम्मिलन द्वारा उत्पादक शक्तियों के अधिक व्यापक संयोजन। अब भी जहां-तहां, उत्पादन की मुख्य शाखाओं में घनिष्ठतर साहचर्य। इस प्रकार बड़े उद्यमपति अपने उद्योग के लिए आवश्यक बच्चे मालों के कम से कम कुछ हिस्से के लिए दूसरों से स्वतंत्र होने के लिए बड़ी भू-संपत्तियां भी प्राप्त करने का यत्न करेंगे, अथवा अपने औद्योगिक उद्यमों के माध्यम मिलकर वे केवल स्वयं अपने निर्मित मालों को बेचने के लिए ही नहीं, बल्कि अन्य प्रकारों के उत्पादों को खरीदने और उन्हें अपने मजदूरों को बेचने के लिए भी व्यापार में जायेंगे। इंग्लैंड में, जहां भकेला कारखाना मालिक कभी-कभी इन से बारह हजार मजदूरों को काम पर रखता है... एक ही मस्तिष्क द्वारा नियंत्रित उत्पादन की विभिन्न शाखाओं के ऐसे संयोजनों को, राज्य के

[illegible]

मकान मालिक गरीबी से जो धपार मुनाफे बनाते हैं।
कराया मकान औद्योगिक निर्धनता के व्युत्क्रमानुपात में रहता
है।

इसी प्रकार तबाह हुए सर्वहाराओं के दुर्व्यसनो से प्राप्त मूल भी रहता है। (वेश्यावृत्ति, शराबखोरी, चेटनदारी।)

तब पूजी का सचय बढ़ता है और पूजीपतियों के बीच प्रतिद्वन्द्विता कम होती है, जब पूजी और भू-मपति एक ही हाथ में मिला जाती हैं, और तब भी कि जब अपने आकार की बढ़ती हुई पूजी उत्पादन की भिन्न-भिन्न शाखाओं को संयुक्त करने में समर्थ हो जाती है।

लोगों के प्रति उदासीनता। स्मिथ के बीच लाटरी टिपट।¹³

सेव की निवृत्त तथा सचल आय। | XVI |

जमीन का किराया (लगान)

§ 1, 3। भूस्वामियों के अधिकार का मूल सर्वस्वी में है। (मेय, खंड १, पृ० १३६, टिप्पणी।) अन्य सभी लोगों की तरह ही भूस्वामी भी वहां काटना चाहते हैं, जहां उन्होंने कभी बोया नहीं है, और धरती की नैसर्गिक उपज तब के लिए किराया मांगते हैं। (ऐडम स्मिथ, पूर्वोक्त, खंड १, पृ० ४४ [Garnier, t 1, p 99])

“यह सोचा जा सकता है कि जमीन का किराया मकसर भूस्वामी द्वारा उसके मुधार पर लगाये गये स्टॉक के लिए उचित लाभ या मूड के अलावा और कुछ नहीं होता। बेशक, कुछ अवसरों पर आंशिक रूप में यही बात हो सकती है। . भूस्वामी”
 (१) “अनुत्पन्न जमीन तक के लिए किराया मांगता है, और मुधारने के व्यय पर तथाकथित व्याज अथवा लाभ आम तौर पर इस मूल किराये में सम्बद्ध होता है।” (२) “इसके अलावा ये मुधार हमेशा ही भूस्वामी के स्टॉक द्वारा नहीं, बल्कि कभी-कभी पट्टेदार के स्टॉक द्वारा भी किये जाते हैं। लेकिन जब पट्टे को नवीकृत करने का समय आता है, तो भूस्वामी आम तौर पर किराये की अपनी ही संवृद्धि की मांग

बहुत हिस्सा है। § II, 3 | लेकिन पानी की उपज से लाभ उठा सकने के लिए यह आवश्यक है कि पास की जमीन पर उनके पास रहने की जगह हो। भूस्वामी का किराया किमान जो जमीन से बना सकता है, उसके अनुपात में नहीं, बल्कि वह जमीन से और पानी से, दोनों से जितना बना सकता है, उसके अनुपात में होता है।" (ऐडम स्मिथ, पूर्वोक्त, खंड १, पृ० १३१ [Garnier, t I, pp 301-302])

"इस विगये को उन प्राकृतिक शक्तियों की उपज माना जा सकता है, जिनका उपयोग भूस्वामी किसान को भाड़े पर देता है। वह इन शक्तियों की मानी हुई मीमा के अनुसार, अथवा दूसरे शब्दों में, जमीन की मानी हुई नैसर्गिक अथवा समुन्नत उर्वरता के अनुसार कम या अधिक होता है। उस सब कुछ को घटाने और क्षतिपूर्ति करने के बाद, जिसे मनुष्य का किया हुआ माना जा सकता है, जो बाकी रहता है, वह प्रकृति का किया हुआ है।" (ऐडम स्मिथ, पूर्वोक्त, खंड १, पृ० ३२४-३२५ [Garnier, t. II, pp 377-378])

"सब जमीन के उपयोग के लिए दिये जानेवाले दाम की तरह मानने पर जमीन का किराया कुदरती तौर पर एकाधिकार दाम होता है। उसका भूस्वामी ने जमीन के सुधार पर जो लगाया हो, उसके साथ, अथवा जो वह ले सकता है, उसके साथ कोई अनुपात नहीं होता, बल्कि जो काश्तकार दे सकता है, उसी के साथ होता है।" (ऐडम स्मिथ, पूर्वोक्त, पृ० १३१ [Garnier, t I, p 302])

तीनों मूल वर्गों में भूस्वामियों का वर्ग ही ऐसा है, "जिनकी आय के लिए उन्हें न श्रम लगाना पड़ता है और न ध्यान, बल्कि जो उनके पास यो कहिये कि स्वयं अपनी भरजी से और स्वयं उनकी किसी भी

सोवता का इगरे* में निवेशन का उपाय है
 (ऐडम स्मिथ, पूरॉन, खंड १, पृ० २१० [Garnier
 t. II, p. 161].)

इस प्रकार ही ज्ञान बूझ है कि निवेश का दमन
 की उर्वरता की मांग का निधन करता है।

उमके निवेशन में एक छोटा बाधा है निवेश।

"जमीन का निवेशन न केवल अपनी उर्वरता
 माप, उमारी उर्वरता बाढ़े जो हो, बल्कि अपनी नि
 के माप, उमारी उर्वरता बाढ़े जो हो, घटा-का
 है।" (ऐडम स्मिथ, पूरॉन, खंड १, पृ० ११
 [Garnier, t. I, p. 306].)

"जमीन, घासों, छोटे मत्स्यधेनो की उर्वर, उ
 उमारी नैमगिक उर्वरता बगलर होती है, उमके नि
 निवेशन पूजा के परिमाण तथा उचित। III, 3। उमों
 के अनुमान में होती है। जब पूजा बराबर और सना
 रूप में टीका में लगायी होती है, तो वह उम
 नैमगिक उर्वरता के अनुमान में होती है।" (पूरॉन,
 खंड १, पृ० २४६ [Garnier, t. II, p. 210].)

स्मिथ की ये प्रस्थापनाएँ महत्वपूर्ण हैं, क्योंकि समान
 उत्पादन लागते और समान आकार की पूजा के होने पर,
 वे जमीन के निरावे को मिट्टी की ख़ादा या कम उर्वरता
 के अनुकूल कर देती हैं। इसके द्वारा वे राजनीतिक अर्थशास्त्र
 में अवधारणाओं के विपर्यय को स्पष्ट दिखलाती हैं, जो
 भूमि की उर्वरता को भूस्वाधी के एक गुण में बदल देता है।

लेकिन अब हमे जमीन के किराये पर उम तरह विचार करना चाहिये, जिस तरह वह वास्तविक जीवन मे उत्पन्न होता है।

जमीन का किराया पट्टेदार (काश्तकार) और भूस्वामी के बीच सघर्ष के परिणामस्वरूप स्थापित होता है। हम पाते हैं कि हिंसा का शूलनापूर्ण विरोध, सघर्ष, युद्ध समूचे राजनीतिक अर्थशास्त्र मे सामाजिक मगटन के आधार की तरह मे स्वीकार किया जाता है।

आइये, अब यह देखें कि भूस्वामी और पट्टेदार के बीच संघर्ष क्या है।

“पट्टे की शर्तों व्यवस्थित करते समय भूस्वामी पट्टेदार के पास उपज वा उमसे अधिक हिस्सा न रहने देने का प्रयत्न करता है, जितना अड़ोम-पड़ोम मे कृषि स्टॉक (पूजी) के साधारण लाभों के साथ उम स्टॉक को बनाये रखने के लिए काफी रहना है, जिससे वह बीज मुद्रया करता है, धम की अदायगी करता है और और तथा कृषि के अन्य उपकरण खरीदना और रखता है। प्रकटत यह वह न्यूनतम भाग होता है, जिस पर पट्टेदार हानि उठाये बिना मतोष कर सकता है, और उमके पास उमसे कुछ अधिक छोड़ने की भूस्वामी की वदचित ही मशा होनी है। उपज वा जो भी भाग, अथवा, जो एक ही भाग है, उसके दाम का जो भी भाग इन हिस्से के अन्तावा होता है, उमे भूस्वामी कूदरती तौर पर अपनी जमीन के किराये की तरह अपने लिए आरक्षित करने का प्रयत्न करता है, जो प्रत्यक्षत जमीन की वास्तविक अवस्थाओं को देखने हुए पट्टेदार जिनका उच्चतम दे सकता है, वह होता है। [IV, 3] [...] लेकिन इन धरा को फिर भी जमीन वा नैमर्गिक किराया, अथवा यह

विभाजित करने का लक्ष्य है, जिससे सम्पूर्ण देश में यह मान्य है कि जमीन के उपयोग का विचार यह होना चाहता था कि "लेन ऑफ़, ग्रुव्स, एंड १ पृ. ११०-१११ [Gard. 1 1. pp 299-300])

यह कहते हैं, 'पट्टेदार के लिए धन्य है एक प्रकार के उत्पादन का प्राप्ति करने है। उन्हीं दिन, अगर और जमीन के लिए धन्य प्रयोग करने का लक्ष्य है, वहिन उन्हीं दिन की एक निम्न, सीमित मात्रा ही होती है। धन्य और पट्टेदार के बीच मान्य गीत हमेशा प्रतिफल मात्र सीमित एक प्रयोग के अनुक्रम होता है। मान्य की प्रकृति से उन्हीं जो लाभ प्राप्त होता है, उन्हीं धन्य वह धन्य है निम्न में, धन्य प्रतिफल मात्र और उपाय साधन तथा प्रतिष्ठा से और भी लाभ प्राप्त करता है। लेकिन पट्टेदार ही लाभ धन्य धन्य उन्हीं और केवल उन्हीं ही जमीन की अनुक्रम परिस्थितियों से लाभ उठाने में समर्थ बना देता है। निम्नी नहर या नहर का खुदना, निम्नी बिले की धन्य और समृद्धि का बढ़ना हमेशा निरापे को घटा देता है।... वस्तुतः ही सचता है कि पट्टेदार जमीन को स्वयं अपने खर्च से सुधारे; लेकिन वह इस पूँजी से मिले धन्य पट्टे की अवधि में ही लाभ उठा सकता है, जिसकी समाप्ति के साथ वह जमीन के मानिक के पास रहता है; धन्य से प्रत्यक्ष ही परिस्थितियाँ बिना उससे गूँद बढोरता है, क्योंकि अब निरापे में यथानुसार वृद्धि हो जाती है।" (Say, t II, pp 142-143)

"जमीन के उपयोग के लिए दिये जानेवाले लाभ की तरह मानने पर किराया कुदरती तौर पर जमीन की वास्तविक अवस्थामों में पट्टेदार जितना उच्चतम

दे सकता है, वह होता है।" (ऐडम स्मिथ, पूर्वोक्त, खंड १, पृ० १३० [Garner, t I, p 299])

"जमीन के ऊपर की संपत्ति का किराया भ्राम लौर पर उतना होता है, जिसे सकल उपज को एक निहाई समझा जाता है, और वह सामान्यतया ऐसा किराया होता है, जो निश्चित होता है और फसल में सांयोगिक हैर-फेर में स्वतंत्र ॥ V, 3 ॥ होता है।" (ऐडम स्मिथ, पूर्वोक्त, खंड १, पृ० १५३ [Garner, t I, p 351]) यह किराया "कदाचिन् ही... कुल उपज के एक चौथाई में कम होता है"। (पूर्वोक्त, खंड १, पृ० ३२५ [Garner, t II, p. 378])

किराया सभी जिनो पर नहीं दिया जा सकता है। उदाहरण के लिए कितने ही जिनो* में पत्थरों के लिए कोई किराया नहीं दिया जाता है।

"जमीन की पैदावार के सिर्फ ऐसे हिस्से ही भ्राम लौर पर बाजार लाये जा सकते हैं, जिनका साधारण दाम उम स्टॉक (पूजी) की अपने साधारण लाभो के साथ प्रतिस्थापना करने के लिए काफी रहता है, जिसे उन्हें वहा लाने में नियोजित करना पड़ता है। अगर साधारण दाम इसमें अधिक है, तो बेसी भाग स्वाभाविकतया जमीन के किराये में घटा जायेगा। अगर वह ज्यादा नहीं है, तो चाहे जिस को बाजार लाया जा सकता है, अगर वह भूस्वामी को कोई किराया नहीं प्रदान कर सकेगा। दाम ज्यादा है या नहीं है, यह बाल माग पर निर्भर करती है।" (ऐडम स्मिथ, पूर्वोक्त, खंड १, पृ० १३२ [Garner, t I,

“इसलिए वह दूसरा है कि किसी के लिए ही
 मायता से विद्या: बरहुरी दी माय में मिलिए
 में इतना करना है। उसका सबसे मिल बरहुरी मा
 माय उस हीन व कारण है। उभा परमा में
 विद्या: उभा: बलिताय है। (ऐरन मित्र, दुर्गे,
 पद १, १० ११० [Oman et. l. l. pp 303-304])

भोजन की कला उा अन्तर्गत व की जाती है, जो मा
 किराया प्रदान करती है।

जब सन सभी पक्षों की ही चर्चा अनुष्ठान को
 घाने निर्वाह मायनों के अनुष्ठान में ही बरहुरी करने
 है, इसलिए भोजन हमेशा अनुष्ठान माय में रहता
 है। वह सदा धम की अनुष्ठान मात्रा की शरीर
 प्रमाता नियंत्रित कर सकता है, § VI, 3। और ऐसा
 कोई हमेशा ही पाया जा सकता है, जो भोजन को
 प्राप्त करने के लिए कुछ करने को तैयार है। जेकर
 धम की जिस मात्रा को भोजन शरीर सकता है,
 वह धम की कभी-कभी जो ऊंची बरहुरी दी जाती
 है, उनके कारण अत्यन्त मिनध्यापिकापूर्ण इन से प्रयोग
 में साथे जाने पर, सदा ही उस मात्रा के बराबर
 नहीं होती, जिसका वह भरण-पोषण कर सकता है।
 लेकिन भोजन हमेशा धम की उन्नी मात्रा को शरीर
 सकता है, जितनी का वह उस दर पर भरण-पोषण
 कर सकता है, जिस पर उस प्रकार के धम का सड़ोम-
 पड़ोस में आम तौर पर भरण-पोषण किया जाता है।

“लेकिन जमीन, लगभग किसी भी स्थिति में,
 भोजन की उससे अधिक मात्रा पैदा करती है, जिनकी
 उसे* बाजार लाने समेत आवश्यक समस्त धम का

* “उसे” का आशय भोजन से है, लेकिन पाहुतिपि में
 यहाँ Arbeit (धम) लिखा हुआ है।—स०

भरण-पोषण करने के लिए पर्याप्त होती है [। .] बैशी भी हमेंना ही उस धर्म को नियोजित करनेवाले स्टॉक का, उसके साथी सहित, प्रतिस्थापन करने के लिए यथेष्ट में अधिक होती है। इसलिए भूस्वामी को किराये के लिए हमेंना ही कुछ बचा रहता है।" (ऐडम स्मिथ, पूर्वोक्त, खंड १, पृ० १३२-१३ [Garnier, t I, pp 305-306])

"इस तरह से भोजन न केवल किराये का मूल स्रोत ही है, बल्कि जमीन की पैदावार का हर अन्न भाग, जो बाद में किराया देता है, अपने मूल्य में इस भाग को जमीन के सुधार और वर्णन के जरिं भोजन उत्पन्न करने में धर्म की शक्तियों में सुधार में ही प्राप्त करता है।" (ऐडम स्मिथ, पूर्वोक्त, खंड १ पृ० १२० [Garnier, t I, p 345])

"मानव आहार ही भूमि की वह एकमात्र उप प्रतीत होना है, जो भूस्वामी को सदा और अनिवार्यत कुछ किराया दे सकता है।" (पूर्वोक्त, खंड १ पृ० १४७ [Garnier, t I, p 337])

"देश उन लोगों की सख्या के अनुपात में नहीं जिन्हे उनकी उपज कपडा और आश्रय दे सकती है बल्कि उनकी उस सख्या के अनुपात में आवा होने हैं, जिन्हे वह भोजन दे सकती है।" (ऐड स्मिथ, पूर्वोक्त, खंड १, पृ० १४६ [Garnier, t p 342])

"भोजन के बाद कपडा और आवास ही मानवजाति की दो बड़ी आवश्यकताएं हैं।" वे धाम तीर र किराया प्रदान करते हैं, पर अनिवार्यता ही नहीं (पूर्वोक्त, खंड १, पृ० १४७ [Garnier, t. 1, pp 338]) | VI i

वृद्धि के सर्वप्रथम है। बढ़ने किराया मकान और बढ़नी निर्धनता के बीच मध्य भूस्वामी के समाज में हित का एक उदाहरण है, क्योंकि जमीन का किराया, मकान जिस जमीन पर स्थित होता है, उसमें प्राप्त होनेवाला व्यय, मकान के किराये के साथ बढ़ जाता है।

(२) स्वयं अर्थशास्त्रियों के ही अनुसार भूस्वामी का हित पट्टेदार के हित के—और इस प्रकार समाज के एक महत्वपूर्ण घटक के—शत्रुवत विरुद्ध होता है।

1 XI, 3। (३) चूंकि भूस्वामी पट्टेदार से उतना ही अधिक किराया माग सकता है, जितना कम पट्टेदार मजदूरी देता है, और चूंकि पट्टेदार मजदूरी को उतना ही नीचे घरेलना है, जितना अधिक भूस्वामी किराया मागता है, इसलिए निष्कर्ष यह निकलता है कि भूस्वामी का हित खेतिहर मजदूरों के हित का उतना ही विरोधी होता है, जितना कारखानेदारों का हित अपने मजदूरों के हित का विरोधी होता है। वह भी इसी प्रकार मजदूरी को निम्नतम पर घरेलना है।

(४) चूंकि उद्योगों के मालों के दाम में वास्तविक कमी जमीन के किराये को बढ़ाती है, इसलिए औद्योगिक मजदूरों की मजदूरी को गिराने में, पूँजीपतियों के बीच प्रतिद्विष्टता में, उत्पादन में, औद्योगिक उत्पादन के साथ संबद्ध सारी दुरावस्था में, भूस्वामी का प्रत्यक्ष हित होता है।

(५) जहाँ इस प्रकार भूस्वामी का हित समाज के हित के सर्वप्रथम होने की बात तो दृष्टिकार, वह पट्टेदारों, खेतिहर मजदूरों, कारखाना मजदूरों और पूँजीपतियों के हित के शत्रुवत विरुद्ध होता है, वहाँ दूसरी ओर, एक भूस्वामी का हित उस प्रतिद्विष्टता के कारण, जिस पर हम

घर दिवार बरमे, दूगरे भूमिमी तर के जि के धोने
नहीं होता।

सामान्य रूप में बड़ी छोटी भूमिपति का मूल्य
छोटी छोटी भूमि के मूल्य जैसा ही है। लेकिन इनमें इस
तरीके विशेष परिस्थितियाँ होती हैं, जो परिशेषों को
भूमिपति के मूल्य और उनके द्वारा छोटी भूमिपति के सम्पत्तियों
को धार में आती हैं।

॥ XII, 3 ॥ (१) स्टॉक (भूमि) के धार में वृद्धि के
साथ मजदूरों और उपकरणों की मापेश मर्यादा और
उममें अधिक नहीं घटती, जिनकी वृद्धि में घटती है। इन
प्रकार स्टॉक के धार में वृद्धि के साथ सर्वोत्तम प्रो
की, उत्पादन लागतों को घटाने की, और कारण
विभाजन की सम्भावना और वही उममें अधिक नहीं बढ़े
जितनी वृद्धि में। खेत बाहे वित्तना छोटा क्यों न हो, जो
कारण किये जाने के लिए उपकरणों (हल, धारा, आदि)
के एक विशेष न्यूनतम की आवश्यकता होती है, जब
भूमिपति के टुकड़े के धार को इस न्यूनतम के कहीं नी
तक घटाया जा सकता है।

(२) बड़ी भूमिपति उस भूमि पर ध्यान को अपने
ममेड लेती है, जिसे पट्टेदार ने जमीन को मुधारने के नि
नियोजित किया है। छोटी भूमिपति को स्वयं अपनी भूमि
नियोजित करनी होती है, और इसलिए उसे यह लाभ सर्व
नहीं मिलता है।

(३) जहाँ हर सामाजिक सुधार बड़ी भूमिपति को सा
पहुचाना है, वहाँ वह छोटी भूमिपति को नुकसान करता है
क्योंकि वह नकदी की आवश्यकता को बढ़ा देता है।

(४) इस प्रतिद्वन्द्विता ने दो महत्वपूर्ण निष्कर्षों पर विचार
करना अभी बाकी रहता है:

(क) कर्पिन* भूमि का किराया, जिसकी उपज मानव आहार है, अन्य कर्पिन भूमि के अधिकांश के किराये का नियमन करता है। (ऐंडम निमेष, पूर्वोक्त, पृष्ठ १, पृ० १४४ [Garnier, t 1, p 331])

अन्य केवल बड़ी भू-संपत्ति ही पशु, आदि जैसा आहार उत्पन्न कर सकती है। इसलिए वह दूसरी जमीनों के किराये का नियमन करती है और उसे किराया न्यूनतम पर ले जा सकती है।

अन्य स्वयं अपनी जमीन पर काम करनेवाले छोटे भूस्वामी का बड़े भूस्वामी की मापेक्षता में बड़ी संवध होता है, जो कारखाना मालिक की मापेक्षता में मरदा अपने औजार रखने-वाले कारीगर का होता है। छोटी भू-संपत्ति एक धर्म उपकरण मात्र बन गयी है। ॥ XVI, 11¹⁸ छोटे मालिकों के लिए किराया सर्वथा विलुप्त हो जाता है, उनके लिए हद में हद अपनी पूँजी पर व्याज और अपनी मजदूरी ही बाकी रह जाती है। कारण कि किराये की प्रतिद्वंद्विता द्वारा इनने नीचे किराया जा सकता है कि वह मालिक द्वारा न निवेशित की गयी पूँजी पर व्याज में अधिक कुछ भी नहीं रहता।

(ख) इसके अलावा हम पहने ही जान चुके हैं कि जमीनो, खदानों तथा मत्स्यक्षेत्रों की समान उर्वरता और समान दक्ष जोषण के साथ उपज पूँजी के साकार के समानुपात होती है। अतएव बड़े भूस्वामी की विजय अनिवार्य है। इसी प्रकार जहाँ समान पूँजिया निर्योजित की जाती हैं, वहाँ उपज उर्वरता के समानुपात होती है। अतः जहाँ पूँजिया

* पाहुनिनि में "कर्पिन" के बजाय "उत्पादित" है। - १०

यह विचार करेंगे, हमारे भूमराश्री तब के दिन के लगे नहीं हाना।

सामान्य रूप में बड़ी और छोटी भूमराश्री का संबंध और छोटी पूँजी के संबंध जैसा ही है। लेकिन इन ऐसी विशेष परिस्थितियाँ होती हैं, जो परिवर्तन के संपत्ति के संबंध और उसके द्वारा छोटी संपत्ति के प्रभाव की ओर ले जाती हैं।

॥ XII, 3 ॥ (१) स्टॉक (पूँजी) के आकार में ही साथ मजदूरों और उपकरणों की मापें सदा और उससे अधिक नहीं घटती, जितनी कृषि में घटती हैं। प्रत्येक स्टॉक के आकार में वृद्धि के साथ सर्वोन्मुखी होती, उत्पादन लागतों को घटाने की, और कारण विभाजन की संभावना और वही उससे अधिक नहीं घटती जितनी कृषि में। खेत चाहे कितना छोटा क्यों न हो, उसे काफ़ी किये जाने के लिए उपकरणों (हल, पारा, बर्तन) के एक विशेष न्यूनतम की आवश्यकता होती है, जब तक भूमराश्री के टुकड़े के आकार को इस न्यूनतम के बही होना तक घटाया जा सकता है।

के बाद ब्यूवा और सेट-डोमिंगो की खदानों के साथ, और पेद्रो की प्राचीन खदानों तक के साथ भी यही हुआ था।" (पूर्वोक्त, खंड १, पृ० १५४ [Garnier, t I, p 353])

स्पष्ट रहा जो बात खदानों के बारे में कहते हैं, वह सामान्य रूप में भू-संपत्ति पर भी बमोबेश लागू होती है

(घ) 'यह दृष्टव्य है कि जमीन का माधायन बाजार दाम हर वही बाजार की माधायन व्याज दर पर निर्भर करता है। अगर द्रव्य के व्याज में जमीन का किराया ज्यादा घतर में कम हो जाये, तो कोई भी जमीन नहीं खरीदेगा, जो जल्दी ही उसके साधारण दाम को घटा देगा। इसके विपरीत अगर साम घतर की क्षतिपूर्ति में बड़ी अधिक होने लगे, तो हर कोई जमीन खरीदेगा, जो जल्दी ही फिर उसके माधायन दाम को बढ़ा देगा।" (पूर्वोक्त, खंड १, पृ० ३२० [Garnier, t II pp 367-368])

जमीन के किराये के द्रव्य पर व्याज के साथ इस संबंध में यह निष्कर्ष निकलता है कि किराया उत्तरोत्तर गिरना ही जायेगा, जिसमें कि अन्त केवल सबसे धनवान लोग ही किराये पर जी सकें। परिणामतः उन भूस्वामियों के बीच सदा अधिक प्रतिद्वन्द्विता होती है, जो अपनी जमीन काफ़ीकारी को पट्टे पर नहीं देते हैं। उनमें से कुछ की बग़्गवादी, बड़ी भू-संपत्ति का और अधिक संचयन।

॥ XVII, 2 ॥ इस प्रतिद्वन्द्विता का और परिणाम यह होता है कि भू-संपत्ति का काफ़ी बड़ा भाग पूँजीपतियों के हाथों में आ पड़ता है और यह कि पूँजीपति इस प्रकार साथ ही भूस्वामी बन जाते हैं, ठीक जैसे उनमें छोटे भूस्वामी अब

कुल भिन्नकर पूत्रीपत्तियों में अधिक और कुछ नहीं होते इसी प्रकार बड़े भूस्वामियों का एक घन साथ ही उद्योगिकों में परिणत हो जाना है।

इस प्रकार अन्तिम परिणाम पूत्रीपत्ति तथा भूस्वामी के बीच भेद का उन्मूलन, जिससे आबादी के समूचे तौर पर सिर्फ दो वर्ग ही बाकी रह जाते हैं—धनजीवी वर्ग और पूत्रीपत्तियों का वर्ग। भू-संपत्ति के साथ यह खुर्दोरोंजी, भू-संपत्ति का एक जिस में स्थापन ही पुराने अभिज्ञान तंत्र की निर्णायक पराजय और वित्तीय अभिज्ञान तंत्र की निर्णायक स्थापना है।

(१) हम इस पर भावनात्मक अधुप्रवाह में हमानियत का साथ नहीं देंगे। हमानियत जमीन को खुर्दफरोशी की शर्मसारी को हमेशा जमीन में निजी संपत्ति की खुर्दफरोशी के पूर्णतः तर्कसंगत, निजी संपत्ति के अधिराज्य में अनिवार्य और वांछित परिणाम के साथ उलझा देती है। एक तो यही कि सामंती भू-संपत्ति वैसे भी अपने स्वभाव से खुर्दफरोशी जमीन है—जमीन, जो आदमी से विसर्गधन कर दी गयी है और इसलिए उसके सामने कुछ बड़े सामंतों की मूर्त में घाती है।

भूमि का लोगो पर एक परकीय शक्ति के नाते प्रभुत्व सामंती भू-संपत्ति में अंतर्निहित है। भूदाय जमीन का पुछल्ला होता है। इसी प्रकार दायकमनिर्दिष्ट जागीर का प्रभु, प्रथम पुत्र, जमीन का होता है। वह उसे दाय में प्राप्त करता है। वस्तुतः निजी संपत्ति का प्रभुत्व भू-संपत्ति के साथ ही जुड़ होता है—वह उसका आधार है। लेकिन सामंती भू-संपत्ति में सामन कम से कम जागीर का गन्ना प्रतीत हो जाता है। इसी प्रकार बड़ा स्वामी और भूमि के बीच

कोरी भौतिक संपदा के सबध की अपेक्षा अधिक अनिष्ट
 रथ का प्रामास्य अब भी बना रहता है। जागीर को उसके
 मु के साथ व्यक्तीकृत किया जाता है। उसे उसका छोटा
 प्य होता है, वह वैरनीय या ह्यूनीय होती है, उसके
 जेपाधिकार, उसका क्षेत्राधिकार, उसकी राजनीतिक
 सियन, आदि रखनी है। यह अपने प्रभु के निरन्तरव जरीर
 ी तरह प्रकट होती है। इसीमे *nulle terre sans
 seigneur** की कहावत निकली है, जो अभिज्ञान रग और
 भू-संपत्ति के सलपन को व्यक्त करती है। इसी प्रकार भू-
 संपत्ति का शासन प्रत्यक्षत मात्र पूजी के शासन की तरह
 ही प्रकट होता। उसमे आनेवाली के लिए जागीर उनकी
 भूमि जैसी अधिक होती है। यह एक सङ्चित प्रकार
 ी राष्ट्रीयता है।

॥ XVIII, 2 ॥ इसी प्रकार सामंती भू-संपत्ति अपने प्रभु
 ी अपना नाम दे देती है, जैसे राज्य अपने राजा को दे
 ता है। उसका पारिवारिक इतिहास, उसके कुल का इतिहास,
 प्रादि—यह सब जागीर को उसके लिए व्यक्तीकृत कर देता
 है और उसे जन्मश उसकी कुल बना देता है, उसे मानवीकृत
 कर देता है। इसी प्रकार जागीर पर काम करनेवालों की
 स्थिति दैनिक श्रमिकों की नहीं होती, बल्कि वे आशिर-
 रथ में स्वयं उसकी संपत्ति होते हैं, जैसे भूदास होते हैं,
 और आशिर रूप में वे उसके साथ आदर, निष्ठा और
 वर्तव्य के बंधनों में जुड़े होते हैं। अतः उनके साथ उसका
 सबध प्रत्यक्षत राजनीतिक होता है, और इसी प्रकार उसका
 एक मानवीय, अंतरंग पक्ष भी होता है। रिवाज, स्वभाव,

* बिना मिन्की मिल्क नहीं। - म०

जानी है। भू-संपत्ति के विभाजन का एक बड़ा सुनाम यह है कि जनमाधारण, जो दामन को अब और अधिक स्वीकार नहीं कर सकते, संपत्ति के ज़रिये उममें भिन्न तरीके से धन को प्राप्त होने हैं, जिसमें उद्योग में होने हैं।

जहां तक बड़ी भू-संपत्ति की बात है, उसके पैग्वीकारों ने हमें ही बुतकतापूर्वक, बड़े पैमाने की कृषि द्वारा प्रदत्त सुनामों का बड़े पैमाने की भू-संपत्ति के साथ तदात्मिकरण किया है, मानो यह वस्तु संपत्ति के उन्मूलन के परिणामस्वरूप ही न होगा कि एक तो ये सुनाम अपना ॥ XX, 2। अधिकतम संभव विस्तार प्राप्त करे, और, दूसरे, केवल तब ही सामाजिक रूप से उपयोगी होने। इसी प्रकार उन्होंने छोटी भू-संपत्ति की खुदाफरोशी की प्रवृत्ति पर आक्षेप किया है, मानो बड़ी भू-संपत्ति अपने में, अपने सामंती रूप तक में—आधुनिक अंग्रेजी रूप की तो बात ही क्या, जो भूस्वामी के सामंतवाद को पट्टेदार की खुदाफरोशी और उद्यमशीलता के साथ जोड़ती है,—अतर्निहित खुदाफरोशी न रखती हो।

जिस प्रकार बड़ी भू-संपत्ति अपने विरुद्ध विभाजित जमीन द्वारा लगाये गये एकाधिकार के उपालभ को खोटा सकती है, क्योंकि विभाजित जमीन भी निजी संपत्ति के एकाधिकार पर ही आधारित है, उसी प्रकार विभाजित भू-संपत्ति भी बड़ी भू-संपत्ति को विभाजन का उपालभ खोटा सकती है, क्योंकि विभाजन वहां भी प्रचलित है, यद्यपि एक धनम्प और निश्चय रूप में। वस्तुतः निजी संपत्ति पूर्णतया विभाजन पर ही आधारित है। इसके अलावा जिस प्रकार जमीन का विभाजन पूंजीवादी संपदा के एक रूप के नाते बड़ी भू-संपत्ति की तरफ वापस ले जाया है, उसी प्रकार सामंती भू-संपत्ति को भी अनिवार्यतः विभाजन की तरफ ले जाना होगा या

प्रणीत होता है। राजनीति धर्मशास्त्र तब तक तब तक को समाप्तमान करता है, वे हैं तोम और मोमियों में इन में सदाई - प्रतिद्विष्टता। *

टीक इमनिष् कि राजनीति धर्मशास्त्र नहीं समझा कि गति किम डग में सबड है, यह समझ था कि, उम्ह के लिए, प्रतिद्विष्टता के मिडान को एकाधिकार के मिड के, शिलो की स्वतंत्रता के मिडान को मिड के मिड के, भू-सपत्ति के विभाजन के मिडान को बड़ी भू-सपत्ति के मिडान के भू-सपत्ति पर रखा जावे - क्योंकि प्रतिद्विष्टता शिलो की स्वतंत्रता और भू-सपत्ति के विभाजन को केवल एकाधिकार के, मिड प्रणाली के, और सामती सपत्ति के साधनिक, पूर्वविवेचित और प्रचड परिणामों की तरह है, न कि उनके आवश्यक, अपरिहार्य और स्वाभाविक परिणामों की तरह समझा और समझाया जाता था।

इसलिए अब हमें निजी सपत्ति, लोभ, और धर्म, पूर्ण सदा भू-सपत्ति के पृथक्करण के बीच अनभूत सबड को समझना है; विनिमय और प्रतिद्विष्टता का, मनुष्य के मूल और अवमूल्यन, एकाधिकार और प्रतिद्विष्टता, भावि का भावना सबड - हमें इव्य प्रणाली से जुड़े इस समझ विरोध को समझना है।

हमें एक कल्पित भाव अवस्था पर वापस नहीं चले जाना चाहिये, जैसे राजनीतिक धर्मशास्त्री व्याख्या करने का प्रयत्न करते समय चला जाना है। ऐसी भाव अवस्था किसी भी

* सादुल्लिहि में इस पैराग्राफ के बाद यह वाक्य चला हुआ है: "हमें अब सपत्ति की इस भौतिक गति की प्रकृति की परीक्षा करना है।" - स०

भादमी का है। अगर मजदूर का क्रियाकलाप उसके लिए
यत्नगर है, तो दूसरे को वह संतोष और सुख प्रदान करता
होगा। मनुष्य के ऊपर यह इतर शक्ति न देवता और न
प्रकृति, बल्कि स्वयं मनुष्य ही हो सकता है।

हमें इस पूर्वोक्त प्रस्थापना को ध्यान में रखना चाहिये
कि मनुष्य का स्वयं के साथ मबध सिर्फ़ उससे दूसरे भादमी
के साथ मबध के जरिये ही उसके लिए वस्तुपरक और
वास्तविक बनता है। इस प्रकार अगर उसके श्रम का उत्पाद,
उसका वस्तुवृत्त श्रम, उसके लिए एक उसमें स्वयं, इतर,
प्रतिकूल, शक्तिशाली वस्तु है, तो उसके प्रति उसका संबंध
इस तरह का है कि कोई और इस वस्तु का स्वामी है,
ऐसा कोई, जो उससे इतर, प्रतिकूल, शक्तिशाली और
स्वतंत्र है। अगर वह स्वयं अपने क्रियाकलाप को धर्मेन्द्रिक
क्रियाकलाप मानता है, तो वह उसे दूसरे भादमी की चाकरी
में, उसके प्रभुत्व, दबाव और जुबे के अंतर्गत किया जाने-
वाला क्रियाकलाप समझता है।

स्वयं से और प्रकृति से मनुष्य का आत्मवियोजन उस
संबंध में प्रकट होता है, जिसमें वह स्वयं को और प्रकृति
को अपने से अलग और विभेदित मनुष्यों की सापेक्षता में
रखता है। इस कारण सांसारिक भादमी के पुरोहित के
साथ, भयवा किसी मध्यस्थ, आदि के साथ संबंध में भी,
क्योंकि हम यही बौद्धिक जगत की बात कर रहे हैं, धार्मिक
आत्मवियोजन अनिवार्यतः आ जाता है। वास्तविक व्यावहारिक
जगत में आत्मवियोजन केवल दूसरे लोगों के साथ वास्तविक
व्यावहारिक संबंध के जरिये व्यक्त हो सकता है। वियोजन
प्रति माध्यम के जरिये होता है, वह स्वयं व्यावहारिक है।
इस प्रकार वियोजित श्रम के जरिये मनुष्य सिर्फ़ वस्तु के

और स्वयं के साथ बाह्य सवध का उत्पाद, फल, परिणाम
परिणाम है।

इस प्रकार विश्लेषण द्वारा निजी संपत्ति इतरीभूत धर्म
की, धर्मान इतरीभूत मनुष्य की, वियाजित धर्म की,
विधोजित जीवन की, विधोजित मनुष्य की, मकल्पना में
उत्पन्न होती है।

यह ठीक है कि यह निजी संपत्ति की गति के परिणामस्वरूप
ही है कि हमने राजनीतिक धर्मशास्त्र में इतरीभूत धर्म
(इतरीभूत जीवन) की मकल्पना को प्राप्त किया है। लेकिन
इस मकल्पना का विश्लेषण दिखाना है कि चाहे निजी
संपत्ति इतरीभूत धर्म का कारण और आधार प्रतीत होनी
है, वास्तव में वह उसका परिणाम ही है, ठीक जैसे देवगण
मूलतः मनुष्य की बौद्धिक धर्माति का कारण नहीं, बल्कि
परिणाम ही हैं। बाद में चक्कर यह सवध अन्योन्य बन
जाता है।

केवल निजी संपत्ति के विकास के चरम बिंदु पर जाकर
ही यह, उसका रहस्य, फिर प्रकट होता है, धर्मान यह
कि एक ओर तो वह इतरीभूत धर्म का उत्पाद है, और
यह कि दूसरी ओर वह धर्म का अपने को इतरीभूत करने
का साधन, इस इतरीभवन का सिद्धिकरण है।

यह प्रस्तुतीकरण शकाल भव तक धनमुलमें विभिन्न
विवादों पर प्रकाश डाल देता है।

(१) राजनीतिक धर्मशास्त्र धर्म की उत्पादन की वास्तविक
धर्मशा मानकर चपता है; फिर भी वह धर्म को कुछ भी
नहीं, और निजी संपत्ति को सभी कुछ दे देता है। इस
धर्मविरोध को लेकर भूदों ने निजी संपत्ति के विरुद्ध धर्म के
पक्ष में निष्कर्ष निकाले हैं।^{११} लेकिन हमारी समझ है कि

गति को अपने अम द्वारा विनियोजित करता है, यह विनियोजन वियोजन, उसका अपने स्वतःस्फूर्त क्रियाकलाप दूसरे भादमी के लिए क्रियाकलाप और दूसरे भादमी का क्रियाकलाप, जीवन बल जीवन का बलिदान, वस्तु का उत्पादन वस्तु का एक इतर शक्ति के लिए, एक इतर व्यक्ति के लिए शोष प्रतीत होता है—अब हम मजदूर के साथ, अम और उसके विषय के साथ इस व्यक्ति के संबंध पर विचार करेंगे, जो अम और मजदूर के लिए इतर है।

पहले यह ध्यान में रखना होगा कि वह सब, जो मजदूर में इतरीभवन के, वियोजन के क्रियाकलाप की तरह लगता है, वह गैर-मजदूर में इतरीभवन की, वियोजन की अवस्था की तरह लगता है।

दूसरे, यह कि उत्पादन में और उत्पाद के प्रति मजदूर का वास्तविक, व्यावहारिक रवैया (एक मानसिक अवस्था की तरह) उसके सामने खड़े गैर-मजदूर में सैद्धांतिक रवैया प्रकट होता है।

॥ XXVII ॥ तीसरे, गैर-मजदूर मजदूर के खिलाफ वह सभी कुछ करता है, जो मजदूर अपने खिलाफ करता है, लेकिन वह अपने खिलाफ वह नहीं करता, जो वह मजदूर के खिलाफ करता है।

भाइये, इन तीनों संबंधों पर अधिक निकट से दृष्टिपात करें।* ॥ XXVII ॥

* हम स्वतः पर पहली पाइलिपि धधुरी छूट जाती है। — स *

को धायम में जोड़ने का, जनगण में मैत्री का संवर्धन करने-
 बाने व्यापार को जन्म देने का, बुद्ध नैतिकता और सुशुद्धापी
 मरुति का सुजन करने का, लोगों की असम्यग् आवश्यकताओं
 के स्थान पर सम्यग् आवश्यकताएँ और उन्हें सुष्ट करने के
 साधन प्रदान करने का दावा करती है। उसका दावा है कि
 उधर भूमिामी—यह निष्ठुला, परजीवी बल्ला मुनाफाखोर—
 लोगों की बुनियादी उन्नति की चीजों के दाम को चढ़ा देता
 है और इसलिये पूँजीपति को उत्पादित बढाने में मक्षम हुए
 बिना मजदूरी चढ़ाने के लिए मजबूर करता है, इस प्रकार
 राष्ट्र की वार्षिक आय [की वृद्धि को], पूँजी-मजदूर को,
 और फलतः लोगों के लिए काम और देश के लिए संपदा
 उपलब्ध करने की संभावना में बाधा डालता और अन्न
 निरस्त कर देता है और एक प्रकार सामान्य हानि पैदा
 करता है—जब कि वह प्राधुनिक मध्यता के प्रत्येक मुनाफ
 का, उसके लिए न्यूनतम भी किये बिना और अपने सामंती
 पूर्वाग्रहों को नतिक भी घटाये बिना—परजीवीवत लाभ
 उठाता है। अतः, उसे—जिनके लिए जमीन के फल
 किये जाने और स्वयं जमीन का निर्फल धन के स्रोत के ताने
 ही अस्तित्व है, जो उसके पास भेंट की तरह आता है—
 उसे अपने पहुँचारे पर जरा एक नजर भर डालने दीजिये
 और कहने दीजिये कि क्या वह खुद एक पक्का, वित्तप्रण,
 घुल्लं बदमाश नहीं है, जो अपने दिल में और अमनियत में
 बहुत नवे घरों में मुक्त उद्योग और मनोहर व्यापार के
 साथ संलग्न रहा है, चाहे वह कितना ही प्रतिवाद और
 ऐतिहासिक स्मृतियों और नैतिक अथवा राजनीतिक लक्ष्यों
 के बारे में वक्तव्य क्यों न करे। अपना औचित्य-स्थापन करने
 के लिए वह वास्तव में जो कुछ भी कह सकता है, वह निर्फल

करने और इसलिए धर्म को अपनी पूर्ण संपूर्णता में (अर्थात् निरपेक्षता में) सिद्धांत के रूप में उठाने की दिशा में आवश्यक आगे कदम उठा लिया गया है। प्रवृत्तिवाद के विनाश यह इनीन दी जाती है कि कृषि आर्थिक दृष्टिकोण में—अर्थात् कहने का मतलब यह कि एवमात्र मान्य दृष्टिकोण में—किमी भी अन्य उद्योग में भिन्न नहीं है, और यह कि इसलिए धन का सार विभी विशेष तत्व के साथ जुड़ा धर्म का कोई विशेष रूप—धर्म की कोई विशेष अभिव्यक्ति—नहीं, बल्कि सामान्य रूप में धर्म ही है।

धर्म को धन का सार घोषित करके प्रवृत्तिवाद विशेष, बाध्य, भाव्य वस्तुरूप संपदा को सम्बोद्ध करता है। लेकिन प्रवृत्तिवाद के लिए धर्म धारम में सिर्फ भू-संपत्ति का आत्मगत सार ही है। (वह संपत्ति के उस प्रकार से ग्रन्थान करता है, जो इतिहासमय अभिवादी और मान्य प्रकार प्रतीत होता है।) वह केवल भू-संपत्ति को ही इतरोभूत मनुष्य में परिणत करता है। वह उद्योग (कृषि) को उमसा सार घोषित करके उसके सामनी स्वरूप को निराहृत कर देता है। लेकिन वह उद्योग की दुनिया को सम्बोद्ध करता है और कृषि को एवमात्र उद्योग घोषित करके सामनी व्यवस्था को स्वीकार करता है।

यह स्पष्ट है कि अब अगर उद्योग का आत्मगत सार (उद्योग के भू-संपत्ति के विरोध में होने या, अर्थात् उद्योग के स्वयं को उद्योग के रूप में सविज्ञित करने का) विचारधीन है, तो यह तब अपने भीतर अपने विनाश को समाविष्ट सिधे हुए है। कारण कि जिस प्रकार उद्योग में निराहृत भू-संपत्ति समाविष्ट है, उसी प्रकार उद्योग के आत्मगत सार में साथ ही भू-संपत्ति का आत्मगत सार समाविष्ट है।

४७६ - श्री महाभारतक अन्तिमोक्त २।^{३१} इस श्लोक में
मनुष्ये मोक्ष पर लक्ष्यित कर दे करद्वारा

११। अतः यत्र ४७६ में इसका [इस श्लोक का] अर्थ
साक्षात्परीक्षण और विचारण ही है। इस श्लोक का एक ही
अर्थ ही प्रकट होता है। यह और भी अधिक स्पष्ट हो जायेगा
यदि हमें यह याद रहे कि श्री गुरुदेव द्वारा निम्नोक्त श्लोक
की व्याख्या करने वाले लोग नहीं हैं, वह हम सब कुछ ही
गुरु का दया करण है। वह प्रमाण, अर्थात् श्री गुरुदेव
मोक्ष पर ध्यानपूर्वक करता करता है। उसके लिए और
और ध्यानपूर्वक का अर्थमात्र प्रमाण प्रमाण, अर्थात् प्रमाण
है। भक्तगुरु गुरु का धन नहीं कर दिया जाता, बल्कि उसे
साधन पर साधन कर दिया जाता है। निम्नोक्त श्लोक का
मन्त्र धर्म प्रमाण व साधन मन्त्राचार के मन्त्र के रूप में बन
जाता है। यही साधन निम्नोक्त श्लोक की निम्नोक्त श्लोक
के मुक्तकाले स्थान की यह प्रश्न विचार (निम्नोक्त श्लोक
निम्नोक्त श्लोक का एक रूप) के मुक्तकाले में स्त्रियों के साधन
की स्थान के प्राकृतिक रूप में अभिव्यक्ति पाती है, जिसमें
ही सामुदायिक और सामाजिक शक्ति का एक हिस्सा
बन जाती है। कहा जा सकता है कि स्त्रियों के साधन
का यह विचार हम सभी तक पूर्णतः अनिष्ट तथा वि-
चारशून्य कम्युनिज्म का भेद होत देता है।^{३१} जैसे ही
विचार से सामान्य वेश्यावृत्ति में पहुँच जाती है, * वैसे ही

* वेश्यावृत्ति अधिक के सामान्य वेश्याम्वरूप की विशिष्ट
अभिव्यक्ति मात्र है, और चूँकि यह एक ऐसा शब्द है,
जिसमें घबेली वेश्या ही नहीं, बल्कि जो वेश्यागामिना करे,
वह भी शामिल है, - और अतः ही की धृतिमान और भी

धन का (अर्थात् मनुष्य के वस्तुगत मूल्य का) समस्त समार
 भी निजी संपत्ति के स्वामी के माथ अनन्य विचार संबंध में
 समुदाय के माथ शार्दिक वस्तुवृत्ति की अवस्था में चला
 जाता है। इस प्रकार का कम्युनिज्म — क्योंकि वह मनुष्य
 के व्यक्तित्व को प्रत्येक क्षेत्र में नकारता है — निजी संपत्ति
 की तत्समग्न अभिव्यक्ति मात्र है, जो यह निषेध है। सामान्य
 ईर्ष्या का अपने को एक शक्ति बना लेना ही वह आवरण
 है, जिसमें लोभ अपने को पुनर्स्थापित करना और अपने
 को तुष्ट करता है, अलबत्ता दूसरे हग में। अपने में हर
 निजी संपत्ति — कम से कम संपन्नतर निजी संपत्ति के प्रति —
 ईर्ष्या और बराबरी का स्तर पान की लालसा मज्जूम करती
 है, जिससे यह ईर्ष्या और लालसा प्रतिद्वंद्विता का मार तर
 बन जाती है। अपरिपक्व कम्युनिज्म इन ईर्ष्या की और
 पूर्ववर्णित न्यूनतम में उद्भूत इस समस्तरण का चरम मात्र
 है। उसका एक निश्चय, सीमित मानक है। निजी संपत्ति
 का यह निगकरण यद्यप्य में उसका विनियोजन विनना कम है,
 यह वस्तुतः सत्सृति तथा सभ्यता के समस्त विश्व के समूर्त
 निषेध, निर्धन तथा अपरिष्कृत मनुष्य की अस्वाभाविक
 ॥ IV ॥ मरलता की और पञ्चगमन में मिद्ध होता है, जिसकी
 आवश्यकताएं थोड़ी ही होती हैं और जो न केवल निजी
 संपत्ति के आगे जाने में ही असफल रहा है, बल्कि अभी
 उस तक पहुँचा भी नहीं है।

साक्षात्पन केवल धर्म का साक्षात्पन और सामुदायिक पूजा
 द्वारा — शार्दिक पूजापति के माते समुदाय द्वारा — दी जानेवाली

साधिक है — इसलिए पूजापति, आदि भी इसी सीपक के
 भवर्गत आता है। — मार्क्स की टिप्पणी। ³⁵

जिन प्रकार मनुष्यसत्ति निजी सत्ति का रहता है और इतिहासगत उद्योग प्रारंभ में उमरों सामने निर्युक्त होने के एक विशेष प्रकार के माने—अथवा यों कहें कि मनुष्यसत्ति के विपरीत काम के माने—ही माना है, उमरों प्रकार से प्रकृति अपने आपसे निजी सत्ति के आत्मगत सार, धर्म, के वैज्ञानिक विनिर्माण में सहयोगी है। धर्म प्रारंभ में प्रकृति की तरह प्रकट होता है, लेकिन फिर वह अपने को सामान्य रूप में धर्म की तरह स्थापित कर लेता है।

॥ III ॥ सारा धर्म भौतिक धर्म, धर्म का धर्म, धर्म का धर्म है, और उद्योग निष्पादित धर्म है, ठीक जैसे कारखाना व्यवस्था उद्योग का, अर्थात् धर्म का, परिपूर्ण सार है। और ठीक जैसे भौतिक धर्म निजी सत्ति का परिपूर्ण वस्तुगत रूप है।

अब हम देख सकते हैं कि क्यों ठीक इस स्थल पर ही निजी सत्ति मनुष्य पर अपने प्रभुत्व को संपूर्ण कर सकती है और, अपने सबसे सामान्य रूप में, एक विश्ववैज्ञानिक शक्ति बन सकती है।

[निजी सत्ति और कम्युनिज्म]

पृ० XXXIX के बारे में।* जब तक उसे धर्म और धर्म के बीच विरोध की तरह नहीं समझा जाता है, तब तक सत्ति के अभाव और सत्ति के बीच विरोध अपने सख्त संयोजन में, अपने आंतरिक मध्य में न ग्रहण किया गया, धर्म भी एक अंतर्विरोध के रूप में न ग्रहण किया

* इसका अर्थ हमारी पाठ्यपुस्तिका के मूल धर्म से है।—स०

गया उदासीन विरोध ही बना रहता है। अपने इस पहले रूप में वह निजी संपत्ति के अग्रिम विकास के बिना भी अभिव्यक्ति या मकता है (जैसे प्राचीन रोम, तुर्की, आदि में)। वह अभी स्वयं निजी संपत्ति द्वारा स्थापित किया गया नहीं प्रतीत होता। लेकिन धर्म—निजी संपत्ति के अपवर्जन के रूप में निजी संपत्ति का आत्मगन सार, और पूँजी—धर्म के अपवर्जन के रूप में वस्तुगन धर्म, अंतर्विरोध की विकसित अवस्था के रूप में—अंत समाधान की ओर अग्रसर एक गत्यात्मक संघर्ष के रूप में—निजी संपत्ति का संरचित करते हैं।

उसी पृष्ठ के शारे में। आत्मवियोजन के अतिक्रमण का वही धर्म रहता है, जो आत्मवियोजन का। निजी संपत्ति को पहले उसके सिर्फ वस्तुगत पक्ष में ही—किंतु फिर भी धर्म को उसके मार-रूप में लेने हुए ही—विचार में लाया जाता है। अंत उसका अस्तित्व-रूप पूँजी है, जिसे “उसी रूप में” (प्रूदो) निराकृत कर दिया जाना है। अथवा धर्म के एक विशेष रूप—अवनत किये, विखंडित, और फलतः अस्वतंत्र धर्म—की निजी संपत्ति की अनिष्टकारिता के ओर लोगों में वियोजन में उसके अस्तित्व के स्रोत की तरह कल्पना की जाती है। उदाहरण के लिए कुरिये, जो प्रकृति-तत्त्ववादियों की ही भांति, कृषि धर्म को कम से कम अनु-करणीय प्रकार का मानते हैं, जब कि वे सीमाओं इसके विपरीत कहते हैं कि औद्योगिक धर्म अपने में सार है, और इसलिए उद्योगपतियों के अनन्य भासन और मजदूरों की अवस्था में सुधार की आकांक्षा करते हैं। अंतिम बात, कम्युनिज्म १—धारम में सार्वत्रिक निजी संपत्ति के

धन का (अर्थात् मनुष्य के वस्तुगत मत्व का) समझ मनाए भी निजी संपत्ति के स्वामी के साथ अनन्य विवाह संबंध में समुदाय के साथ सार्विक वैश्यावृत्ति की अवस्था में चला जाता है। इस प्रकार का कम्युनिज्म — क्योंकि वह मनुष्य के व्यक्तित्व को प्रत्यक्ष धोक में नकारता है — निजी संपत्ति की सर्वमगत अभिव्यक्ति मात्र है, जो यह निषेध है। सामान्य ईर्ष्या का अपने को एक शक्ति बना लेना ही वह आवरण है, जिसमें लोभ अपने को पुनः स्थापित करना और अपने को नष्ट करता है, अवस्था दूसरे दुर्ग में। अपने में हर निजी संपत्ति — कम से कम संपन्नतर निजी संपत्ति के प्रति — ईर्ष्या और बराबरी का स्तर पाने की लालसा महसूस करती है, जिससे यह ईर्ष्या और लालसा प्रतिद्वंद्विता का मार तक बन जाती है। अग्रिमव कम्युनिज्म इस ईर्ष्या की और पूर्वकल्पित न्यूनतम में उद्भूत इन समझरण का चरम मान है। उसका एक निश्चित, सीमित मानक है। निजी संपत्ति का यह निराकरण यथार्थ में उसका विनियोजन बिना कम है, यह वस्तुतः सत्त्विति तथा भव्यता के समस्त विश्व के अमर्त निषेध, निर्धन तथा अग्रिमवृत्त मनुष्य की अस्वाभाविक है IV। सरलता की ओर पञ्चगमन में मिश्र होता है, जिसकी आवश्यकताएँ थोड़ी ही होती हैं और जो न केवल निजी संपत्ति के धागे जाने में ही असफल रहा है, बल्कि अभी उस तक पहुँचा भी नहीं है।

साक्षात्पन केवल भ्रम का साक्षात्पन और सामुदायिक पूँजी द्वारा — सार्विक पूँजीपति के जाने समुदाय द्वारा — की जानेवाली

अधिक है — इसलिए पूँजीपति, यदि भी इसी शीघ्र के घटगत माना है। — मार्क्स की टिप्पणी। २५

मध्य सा पर १ कि यह निरीक्षणार्थ सभी दर्शन
समूहकर्म ही होता है।

यह निरीक्षणार्थ का मानकप्रेम धारण में केवल तर्क
निक, समूह मानकप्रेम १, और कम्प्यूटेशन का दस्ता
एकदम वास्तविक और गोप्य कार्य की ओर उच्च है।

हम देख चुके हैं कि किम प्रकार मन्त्रालय का
निर्माण निजी संपत्ति की बलपूर्वक रूप सेने पर मनुष्य प्रदु
को-धर्म को और दूसरे मनुष्य को-उत्पन्न करता है,
किम प्रकार उनकी वैयक्तिकता को प्रत्यक्ष अभिव्यक्ति
के कारण विषय भाष ही दूसरे भादमी के लिए
संपत्ति अभिव्यक्ति, दूसरे भादमी का अस्तित्व और
लिए वह अस्तित्व भी है। लेकिन इस प्रकार हम सा
और विषयो के नाते मनुष्य, दोनों गति का परिणाम
प्रस्थान बिंदु भी है (और ठीक इसी तथ्य में कि उ
प्रस्थान बिंदु होता आवश्यक है, निजी संपत्ति की ऐतिहा
अनिवार्यता निहित है)। इस प्रकार सामाजिक स्वरूप स
गति का सामान्य स्वरूप है जिम प्रकार समाज स्वयं मनु
को मनुष्य के रूप में पैदा करता है, उसी प्रकार हम
उसके द्वारा पैदा किया जाना है। कार्यकलाप में
उपभोग, दोनों संपत्ति अंतर्गत तथा अस्तित्व-रूप में सामाजिक
हैं - सामाजिक * कार्यकलाप और सामाजिक उपभोग। प्रती
का मानक पर केवल सामाजिक मनुष्य के लिए ही होता
है, क्योंकि केवल तब ही प्रकृति का उसके लिए मनुष्य
के साथ आबंध के नाते-दूसरे के लिए उसके अस्तित्व और

* पांडुलिपि में यह शब्द बाटा हुआ है। - स०

केवल काबिष्ठ होने के, रखने के धर्मों में नहीं रहता
 जानी पाठ्ये। मनुष्य अपने सर्वममावेगी सार का सर्वममावेगी
 दम में, करने का मतलब यह कि संपूर्ण मनुष्य की व
 विनियोजन करना है। जगत् के साथ उनके मानव ह
 में से प्रत्येक - दृष्टि, ध्वनि, प्राण, स्वाद, स्पर्श, विचार
 प्रेरण, अनुभव, कामना, कार्य, प्रेम-संशय में, उन
 वैयक्तिक सत्व के सभी धर्म, उन धर्मों की ही प्राप्ति, वे
 अपने रूप में प्रत्यक्ष सामाजिक हैं, ॥ VII ॥ अपने वस्तुगत
 अभिविन्यास में, धर्मवा वस्तु के प्रति अपने अभिविन्यास में,
 वस्तु का विनियोजन, मानव वास्तविकता का विनिय
 है। वस्तु के प्रति उनका अभिविन्यास मानव वास्तविकता
 की अभिव्यक्ति है, यह मानव कार्यकलाप और मनु
 दुःखभोग है, क्योंकि दुःखभोग, मानविक दृष्टि से, मनुष्य
 का एक प्रकार का आत्म-उपभोग है।
 निजी संपत्ति ने हमें इतना जड़मति और एगोरी बना
 दिया है कि कोई वस्तु सिर्फ तभी हमारी होती है कि ज
 वह हमारे पास हो - जब वह हमारे लिए पूजा की तर्ह
 अस्तित्वमान हो, अथवा जब वह प्रत्यक्ष कब्जे में हो
 छापी, पी, पहनी, आवासित, आदि होती है - संशय में
 जब वह हमारे द्वारा प्रयुक्त की जाती है। यद्यपि निज
 संपत्ति स्वयं दूसरी ओर कब्जे के इन सभी प्रत्यक्ष निद्रिकरणों
 केवल जीवन साधनों के नाते ही कल्पना करती है, और
 साधनों के नाते जिस जीवन के काम आते हैं, वह निजी
 संपत्ति का जीवन-धर्म और पूजा में परिवर्तन - ही है।

इस कारण इसमें इतनी ही विविधता है, जितनी मानव
 और क्रियाकलापों के निर्धारणों में। - भाषम की टिप्पणी।

इसलिए इन सभी शारीरिक तथा मानसिक संवेदनो के ज्ञान पर इन सभी संवेदनो का विशुद्ध वियोजन, रखने का विवेक आ गया है। मानव सत्त्व को इस पूर्ण दृष्टिता में परिणत किया जाना जरूरी था कि जिसमें वह अपनी शारीरिक पिदा बाह्य जगत् को दे सके। ("रखने" के सर्वग के धारे *Einundzwanzig Bogen* में हेस्त* का लेख देखें।)

अतः निजी संपत्ति का उन्मूलन समस्त मानव संवेदनो तथा गुणो की पूर्ण मुक्ति है, किन्तु यह मुक्ति ठीक इस कारण ही है कि ये संवेदन तथा गुण वस्तुपरक तथा आत्मगत रूप में मानविक बन गये हैं। नेत्र मानव नेत्र बन गया है, वैसे उसकी वस्तु एक सामाजिक, मानव वस्तु—मनुष्य द्वारा मनुष्य के लिए निर्मित वस्तु—बन गयी है। अतः संवेदन अपने व्यवहार में प्रत्यक्ष सिद्धांतकार बन गये हैं। वे अपने को वस्तु के साथ वस्तु की खातिर संबद्ध करते हैं, किन्तु स्वयं वस्तु अपने साथ और मनुष्य** के साथ एक वस्तुपरक मानव संबध है, तथा तत्प्रतिबिम्बमान्। फलतः आवश्यकता अथवा उपभोग ने अपनी बहुभावी प्रकृति को गवा दिया है, और प्रकृति ने मानव उपयोग बनकर अपनी मात्र उपयोग द्वारा उपयोगिता को गवा दिया है।

इसी तरह से अन्य लोगो के संवेदन और उपभोग मेरी अपनी उपलब्धि बन गये हैं। इसलिए इन प्रत्यक्ष अंगो के

* Moses Hess, *Philosophie der Tat.* — पृ०

** व्यवहार में मैं अपने को किसी वस्तु से मानविक ढंग से सिर्फ तब ही संबद्ध कर सकता हूँ कि अगर वस्तु स्वयं को मनुष्य के साथ मानविक ढंग से संबद्ध करती है।—
माक्स की टिप्पणी।

समाज सामाजिक धर्म समाज के रूप में निर्मित है। इस प्रकार, उदाहरण के लिए, धर्म लोगों, धर्म के लिए सहयोग में किया गया मेरे अपने जीवन को प्रभावित करने के लिए एक धर्म और मानव जीवन को विनिर्देशित करने का रूप बन गया है।

यह प्रत्यक्ष है कि मानव नेत्र लोगों का धर्म मानव नेत्र से भिन्न रूप से, मानव कान धर्म से भिन्न रूप से, उपयोग करता है, धर्म।

हम देख चुके हैं कि मनुष्य अपने धर्मों की धर्म में केवल तब ही नहीं गवाना है कि जब वस्तु उनके लिए मानविक वस्तु धर्म वस्तु मनुष्य बन जाती है। यह केवल तब ही संभव है कि जब वस्तु उनके लिए एक सामाजिक वस्तु, यह स्वयं अपने लिए एक सामाजिक धर्म बन गया है, जैसे समाज उनके लिए इस वस्तु में एक धर्म बन जाता है।

इसलिए एक और तो यह धर्म तब ही होता है कि वस्तु जगत समाज में धर्म के लिए धर्म मनुष्य की तात्त्विक शक्तियों का समाज—मानव वास्तविकता, और इन कारण स्वयं उसकी तात्त्विक शक्तियों की वास्तविकता—बन जाता है कि सभी वस्तुएं उनके लिए स्वयं का वस्तु बन जाती है, ऐसी वस्तुएं बन जाती हैं कि जो उसकी वैयक्तिकता की अभिव्यक्ति तथा सिद्धि करती हैं, उसकी वस्तु बन जाती हैं धर्म मनुष्य स्वयं वस्तु बन जाता है। वे जिस रूप से उसकी बनती है, यह वस्तुओं के स्वरूप पर और उनके धर्म तात्त्विक शक्ति के स्वरूप पर निर्भर करता है; कारण कि यह ठीक इस धर्म का निर्धारक स्वरूप ही है कि जो अभिव्यक्ति के धर्म, वास्तविक रूप को गढ़ता है। धर्म को कोई वस्तु उसकी धर्म प्रतीक होती

है, जो वह कान को प्रतीत होती है, और नेत्र की वस्तु कान की वस्तु में भिन्न कोई वस्तु है। प्रत्येक तात्त्विक शक्ति का विशिष्ट स्वरूप ही व्यपार्यत उसका विशिष्ट सार, और इसलिए उसके वस्तुकरण का, उसके वस्तुगत रूप में वास्तविक, सजीव सत्त्व का विशिष्ट रूप भी है। इस प्रकार मनुष्य वस्तु जगत में केवल विचारणा की क्रिया में ही नहीं, । VIII । बल्कि अपने सभी भवेदनों के साथ अभिपुष्ट होता है।

दूसरी ओर, आइये इसे अपने आत्मगत पहलू में देखें। चूँकि केवल संगीत ही मनुष्य में संगीत संवेदन को जगता है, और चूँकि सुदरतम संगीत भी संगीतविरत कान के लिए कोई मानी नहीं रखता—उसके लिए वस्तु [नहीं] है, क्योंकि मेरी वस्तु मेरी तात्त्विक शक्तियों में से एक का पुष्टीकरण ही हो सकती है, इसलिए वह मेरे लिए सिर्फ वही तक अस्तित्वमान हो सकती है कि जहाँ तक मेरी तात्त्विक शक्ति अपने लिए एक आत्मगत समता के रूप में अस्तित्वमान है; क्योंकि मेरे लिए किसी वस्तु का अर्थ सिर्फ वही तक जाता है कि जहाँ तक मेरा संवेदन जाता है (सिर्फ उस वस्तु के अनुसृत संवेदन के लिए ही अर्थ रखता है)—इस कारण सामाजिक मनुष्य के संवेदन असामाजिक मनुष्य के संवेदनों से भिन्न होते हैं। केवल मनुष्य के तात्त्विक सत्त्व की वस्तु रूप में उन्मीलित समृद्धि के ऊपर ही आत्मगत मानव संवेदनआहिता की समृद्धि (संगीत की परछा, रूप की सुदरता का अनुराग—संयोग में, मानव परिशोधन में समर्थ संवेदन, अपने दो मनुष्य की तात्त्विक शक्तियों की तरह अभिपोषित करनेवाले संवेदन) को परिष्कृत किया या अस्तित्व में लाया जा सकता है। कारण कि न केवल

पाषो संवेदन, बिना तथाकथित मानविक संवेदन,
 कि संवेदन (इच्छा, प्रेम, धारि) मर्त्य में मानव
 संवेदनों का मानव स्वरूप भी अपनी वस्तु की
 मानवभूत प्रकृति की बदौलत ही अस्तित्व में आती है।
 संवेदनों का निर्माण समार के ध्यान तक के समस्त
 का कार्य है। भौतिक व्यावहारिक आवश्यकता से इन
 का विकास सीमित प्रथम ही होता है। भ्रूणमर के लिए
 अस्तित्वमान है, वह भोजन का मानविक रूप नहीं है, बल्कि
 सिर्फ भोजन के नाम पर उसका अमूर्त अस्तित्व ही है। वह प्रकृति
 सबसे अपरिष्कृत रूप में भी हो सकता है और यह वह प्रकृति
 प्रसन्न होगा कि यह धारि किस ध्यान में वस्तुओं से
 धारि निया से भिन्न है। बिना से दवा, निर्धनताग्रस्त धारि
 अच्छे से अच्छे नाटक के लिए भी संवेदनशून्य होता है,
 धनिजों का व्यापारी धनिज के सिर्फ धार्मिक मूल्य ही
 हो देखता है, न कि धनिज की सुंदरता तथा विशिष्ट स्वरूप
 को उसे कोई धनिजवैज्ञानिक बोध नहीं होता। इस प्रकार
 मनुष्य के संवेदन को मानविक बनाने के लिए और मानव
 तथा नैसर्गिक तत्व की समस्त संपदा के अनुरूप मानव संवेद
 उत्थान करने के लिए मानव सार का अपने सैद्धांतिक तथा
 व्यावहारिक, दोनों ही पहलुओं में वस्तुकरण होना आवश्यक
 है।

जिस प्रकार उदीयमान समाज निजी संपत्ति की, उसकी
 संपदा तथा निर्धनता की—उसकी भौतिक तथा आत्मिक
 संपदा और निर्धनता की—गति के धारि इग विकास के
 लिए सारी सामग्री को सामने पाता है, उसी प्रकार स्थापित
 समाज अपनी स्थायी वास्तविकता के रूप में मनुष्य को उमने
 व की इस समस्त समृद्धि में उत्थान करता है, समस्त

क्योंकि भव तक गमन मानव क्रियाकलाप स्वयं से निर्धारित
धर्म - धर्मात् उपयोग - क्रियाकलाप ही रहा है) में प्रतीत
इन्द्रियगम्य, इतर, उपयोगी वस्तुओं के रूप में, शिरो
के रूप में, मनुष्य की वस्तुवृत्त तात्त्विक दक्षिण है।

यह मनोविज्ञान विगुड, गवांणीय और वास्तविक विज्ञान
नहीं बन सकता, जिसके लिए यह पुस्तक, सबसे प्रथम
तथा अभिगम्य रूप में विद्यमान इतिहास का भ्रम एवं
विताव बना रहता है। मनुष्य ऐसे विज्ञान के बारे में है
सोचे भी क्या, जो अहंकारपूर्वक मानव धर्म के इस बं
भाग से घसपूक्त रहता है और जो स्वयं अपनी भ्रूणा
को अनुभव नहीं करता है, जब कि उसके सामने उद्घाटित
मानव प्रयास की इतनी संपदा का भ्रम उसके लिए इतने
अधिक कुछ भी नहीं है, जिसे समवतः एक शब्द - "जहर",
"भोड़ी खरत" में व्यक्त किया जा सकता है?

प्राकृतिक विज्ञानों ने अपना क्रियाकलाप उत्पन्न कर दिया
है और विरवर्धमान सामग्री को संचित कर लिया है। लेकिन
दर्शन उनके लिए उतना ही इतर बना रहा है, जितना वे
उसके लिए हैं। उनकी क्षणिक एकता कम एक काल्पनिक
मति ही थी। इच्छा तो थी, पर क्षमता का अभाव था।
य इतिहासशास्त्र प्राकृतिक विज्ञान की तरफ कभी-कभी
, प्रबोधन, उपयोगिता और कुछ विशेष महत्वपूर्ण खोजों
एक नारक के नाने, ध्यान देता है। लेकिन प्राकृतिक
तन में उपयोग के माध्यम से मानव जीवन को व्यावहारिक
में बड़ी अधिक आशा तथा रूपान्तरित किया है, और
मुक्ति को निष्पन्न किया है, यद्यपि उगना सांस्कृतिक
मनुष्य के समानवीकरण को बढ़ावा देना ही रहना
उद्योग प्रवृत्ति का और इसलिए प्राकृतिक विज्ञान का

मनुष्य के साथ वास्तविक, ऐतिहासिक संबंध है। अतः अगर उद्योग की मनुष्य की तात्त्विक शक्तियों के बहिरंग प्रकटीकरण के रूप में कल्पना की जाती है, तो हमें प्रकृति के मानव सार अथवा मनुष्य के प्राकृतिक सार की समझ भी प्राप्त हो जाती है। परिणामतः प्राकृतिक विज्ञान अपनी प्रमूर्तरूपेण भौतिक - अथवा यों कहें कि अपनी प्राध्यात्मिक - प्रवृत्ति को गढ़ा देगा और मानव विज्ञान का आधार बन जायेगा, जैसे वह अब भी - यद्यपि विद्योजित रूप में - वास्तविक मानव जीवन का आधार बन चुका है, और जीवन के लिए एक आधार की और विज्ञान के लिए भिन्न आधार की कल्पना करना निस्मदेह झूठ की कल्पना करना है। मानव इतिहास में - मानव समाज के उत्पत्ति क्रम में - जो प्रकृति विकसित होती है, वह मनुष्य की वास्तविक प्रकृति है, यन् उद्योग के जरिये जो प्रकृति विकसित होती है, वह - चाहे विद्योजित रूप में ही सही - वास्तविक मूलत्वीय प्रकृति है।

इंद्रिय-प्रत्यक्ष (देखें पायःप्रायः) को समस्त विज्ञान का आधार होना चाहिये। विज्ञान सिर्फ नव ही वास्तविक विज्ञान है कि जब वह इंद्रियगम्य चेतना और इंद्रियगम्य आवश्यकता के दुहरे रूप में इंद्रिय-प्रत्यक्ष में बनता है - अर्थात् सिर्फ तब कि जब विज्ञान प्रकृति में प्रारम्भ करता है। सांग इति-हास "मनुष्य" को इंद्रियगम्य चेतना का विषय बनने के लिए तैयार और विकसित करने और 'मनुष्य के नाते मनुष्य' की अपेक्षाओं को उभरी आवश्यकताओं में परिणत करने का इतिहास है। इतिहास स्वयं प्राकृतिक इतिहास का - मनुष्य में विकसित होती प्रकृति का - एक वास्तविक अंग है। प्राकृतिक विज्ञान समय के साथ अपने आपसे मनुष्य के विज्ञान में एकीभूत कर लेगा, जैसे मनुष्य का विज्ञान

मानने आपकी प्राकृतिक विज्ञान में एकीभूत कर के
एक विज्ञान बन जायेगा।

§ X) मनुष्य प्राकृतिक विज्ञान का प्रत्यक्ष विषय है
क्योंकि मनुष्य के लिए, प्रत्यक्ष, इन्द्रियगम्य प्रकृति-
लिए इन्द्रियगम्य रूप में विद्यमान दूसरे प्रादमी को ही
वस्तुतः - प्रत्यक्ष, मानव इन्द्रियगम्यता है (वे मानव
अभिव्यक्तिमा हैं)। वस्तुतः स्वयं उसके इन्द्रिय-प्रत्यक्ष
अस्तित्व पहले दूसरे प्रादमी के जरिये स्वयं के लिए
इन्द्रियगम्यता के रूप में होता है। लेकिन मनुष्य के वि
का प्रत्यक्ष विषय प्रकृति है, मनुष्य का पहला विषय
मनुष्य - प्रकृति, इन्द्रियगम्यता है; और विभिन्न :
इन्द्रियगम्य तात्विक शक्तिमा अपना आत्म-अवधारण :
सामान्यरूपका प्राकृतिक जगत के विज्ञान में हो पा
हैं, जैसे वे अपनी वस्तुरूप सिद्धि केवल प्राकृतिक वस्तु
ही पा सकती हैं। स्वयं विज्ञान के तत्व-चिन्तन की
अभिव्यक्ति के तत्व-भाषा-की इन्द्रियगम्य प्रकृति
प्रकृति की सामाजिक वास्तविकता और मानव प्रा
विज्ञान, यद्यपि मनुष्य का प्राकृतिक विज्ञान सामान्यरूपका

< यह देखा जायेगा कि किस तरह से राजनीतिक अर्थ-
शास्त्र के धन और निर्धनता के स्थान पर संपन्न मनुष्य और
संपन्न मानव आवश्यकता आ जाते हैं। संपन्न मानव साथ
ही जीवन की मानव अभिव्यक्तियों की समस्या की आवश्यक-
ता से अस्त मनुष्य भी है - ऐसा मनुष्य, जिसके स्वयं अपनी
सिद्धि एक आंतरिक आवश्यकता के रूप में, अभाव के रूप
में अस्तित्वमान होती है। केवल मनुष्य की संपन्न ही नहीं,
इसी प्रकार निर्धनता भी - समाजवाद के अन्तर्गत -
किस प्रकार में मानव और इसलिए सामाजिक महत्व प्राप्त

करती है। निर्धनता वह निष्क्रिय घघन है, जो मनुष्य को सबसे बड़े धन—दूसरे मनुष्य—की आवश्यकता का अनुभव करवाता है। मुझ में वस्तुस्थिति का प्राधान्य, मेरी जीवन-क्रिया का इन्द्रियगत प्रस्फोट आवेश है, जो उस प्रकार यहाँ मेरे सत्य की सन्निधता बन जाता है। >

(५) कोई भी सत्य अपने को केवल तब ही स्वतन्त्र समझता है कि जब वह स्वयं अपने पैरो पर खड़ा हो, और वह स्वयं अपने पैरो पर निर्भर तब खड़ा होता है कि जब उसका अस्तित्व स्वयं की वदीनत होता है। जो आदमी दूसरे की मेहरबानी की वदीनत जीता है, वह स्वयं को पराश्रित समझता है। लेकिन मैं पूरी तरह से दूसरे की मेहरबानी पर ही जीता हूँ कि अगर मैं न केवल अपने जीवन के भरण-पोषण के लिए ही उसका ऋणी होऊँ, बल्कि अगर उसने, इसके अलावा, मेरे जीवन का सृजन भी किया है—अगर वह मेरे जीवन का स्रोत है। जब वह स्वयं मेरी सृष्टि नहीं है, तो मेरे जीवन का इस तरह का स्रोत अनिवार्यतः उसके बाहर है। यह सृष्टि एक ऐसा विचार है, जिसे जन मानस से हटाना बहुत कठिन है। यह तथ्य उसके लिए अवोधगम्य है कि प्रकृति और मनुष्य का अस्तित्व खुद अपनी खानिर है, क्योंकि यह व्यावहारिक जीवन में गोबर हर बात का खटन करता है।

पृथ्वी की सृष्टि के विचार को भूज्ञान से—अर्थात् उस विज्ञान से, जो पृथ्वी की उत्पत्ति, पृथ्वी के विकास को एक प्रक्रिया, एक स्वजनन की तरह प्रस्तुत करता है—खरबदस्त थोड़ मिली है। *Generatio aequivoca* सृष्टि सिद्धांत का एक मात्र व्यावहारिक खडन है।^{१०}

यदि हमें व्यक्ति को वह कहना निःसंदेह आसान है,

चाहते हो कि मैं तुम्हारे लिए उन्हें अस्तित्वमान मिद्ध करूँ।
 धन मैं तुमसे कहता हूँ अपने अपाकर्षण को त्याग दो और
 तुम अपने प्रश्न को भी त्याग दोगे। या अगर तुम अपने
 अपाकर्षण पर जमे रहना चाहते हो, तो मगन बनो, और
 अगर तुम मनुष्य और प्रकृति को अस्तित्वमान समझते हो,
 । XI । तो अपने को भी अस्तित्वमान समझो, क्योंकि तुम
 भी निश्चय ही प्रकृति और मनुष्य हो। मोचो मन, मुझसे
 पूछो मन, क्योंकि जैसे ही तुम सोचने और गूँझने हो, तुम्हारे
 प्रकृति और मनुष्य के अस्तित्व में अपाकर्षण का कोई मतलब
 नहीं रहता। या क्या तुम इतने अहवादी हो कि तुम सभी
 कुछ की अस्तित्वमान की तरह कल्पना करना चाहते हो
 और फिर भी चाहते हो कि तुम्हारा अस्तित्व बना रहे ?

तुम जवाब दे सकते हो मैं प्रकृति, आदि की अवस्तुता
 को अभिमूर्ति नहीं करना चाहता। मैं तुमसे उसके उत्पत्ति
 कम के बारे में पूछ रहा हूँ, जैसे मैं शारीरज्ञ में अभिव्यक्ति
 की रचना, आदि के बारे में पूछता हूँ।

लेकिन चूँकि समाजवादी धारणा के लिए समस्त तथा-
 कथित विश्व इतिहास मानव धर्म के जरिये मनुष्य की गर्वना
 के सिवा और कुछ भी नहीं है, मनुष्य के लिए प्रकृति के
 उदय के सिवा और कुछ भी नहीं है, इसलिए उसके पाम
 स्वयं अपने जरिये अपने जन्म का, अपने उत्पत्ति कम का
 प्रकट, अवश्यनीय प्रमाण है। चूँकि मनुष्य और प्रकृति का
 वास्तविक अस्तित्व व्यवहार में, सर्वेद अनुभूति के जरिये,
 प्रत्यक्ष हो गया है, चूँकि मनुष्य इस प्रकार मनुष्य के लिए
 प्रकृति के सत्व की तरह प्रत्यक्ष हो गया है और प्रकृति
 मनुष्य के लिए मनुष्य के सत्व की तरह प्रत्यक्ष हो गयी है,
 १ एक अस्तित्व के बारे में, प्रकृति और मनुष्य के

उपर माय के बारे में प्रश्न - त्रिम प्रश्न में प्रतीति के मनुष्य की अमान्यता को स्वीकारना सही है। व्यवहार में अंगरेज हो गया है। इस अमान्यता परस्वीकरण के नाते अनीश्वरवाद का अब कोई अर्थ नहीं जाता है, क्योंकि अनीश्वरवाद ईश्वर का निषेध है, इस निषेध के जरिये मनुष्य के अस्तित्व को अमान्यता है, लेकिन समाजवाद के नाते समाजवाद की अब इस तरह मध्यस्थता की कोई आवश्यकता नहीं रहती। वह तब तक मनुष्य और प्रकृति की सिद्धांततः तथा व्यवहार इतिहास के साथ प्रारंभ करता है। समाजवाद मनुष्य की सकारात्मक आत्मचेतना है, जो अब धर्म के उन्मुख द्वारा व्यवहृत नहीं होनी, जिस प्रकार वास्तविक लोग मनुष्य की सकारात्मक वास्तविकता है, जो अब निजी संपत्ति के उन्मूलन द्वारा, कम्युनिज्म द्वारा व्यवहृत नहीं होगी। कम्युनिज्म निषेध के निषेध की स्थिति है, और इसलिए मानव मुक्ति तथा पुनर्स्थापना की प्रक्रिया में ऐतिहासिक विकास को अगली अवस्था के लिए आवश्यक वास्तविक रूप है। कम्युनिज्म आसन्न भविष्य का आवश्यक रूप तथा मानव संपत्ति सिद्धांत है, किन्तु अपने में कम्युनिज्म मानव विकास का लक्ष्य, मानव समाज का रूप, नहीं है। ⁴⁰ | XI |

[निजी संपत्ति के शासन के अंतर्गत मानव अपेक्षाएं तथा श्रम विभाजन]

। XIV | ⁴¹ (७) हम देख चुके हैं कि समाजवाद के अंतर्गत मानव आवश्यकताओं की विपुलता जैसा महत्त्व प्राप्त कर लेती है, और इसलिए कोई नयी उत्पादन विधि और

निम्न राजनीतिक धर्मशास्त्र, धन का यह विज्ञान, यह है
 परिणाम का, सम्पत्ति का, बचत का विज्ञान भी है—यह
 यह समझिए कि हम सब जाना है कि मनुष्य को हम
 इस धर्मशास्त्र के आवश्यकता से
 बचाव करने की सीख है मल्लारी उद्योग का
 विज्ञान माध ही तपस्या : भी है, और इस
 सामाजिक भावों तपस्वी, नि मकसदीय और तपस्वी
 निनु उत्पादक दाग है। इ र भावों वह मनुष्य
 है, जो धर्मों मजदूरी का र बचत बंध में उन
 कर देता है, और इसने एक र चाटुकार बता है
 को खोज निकाला है, जो इ त्सार को मूर्त रनी
 है हमें भावुकता में मरावों च पर प्रस्तुत निज
 जा चुका है। इस प्रकार राजनीतिक धर्मशास्त्र—अर्थात्
 सामाजिक और विलासप्रिय स्वरूप के बावजूद—एक सामाजिक
 नैतिक विज्ञान, सभी विज्ञानों में सर्वाधिक नैतिक विज्ञान है।
 आत्मत्याग, जीवन का और समस्त मानव आवश्यकताओं
 का त्याग ही इसकी मुख्य स्थापना है। तुम जितना हो कम
 खाते, पीते और किताबें खरीदते हो, तुम जितना ही कम
 थियेटर, नृत्यशाला, मधुशाला जाते हो; तुम जितना ही
 कम सोचते, ध्यान करते, धितन करते, गाते, चित्रकारी
 करते, पट्टेबाजी करते हो, आदि, उतना ही अधिक रुप
 बचाते हो, तुम्हारा धन—तुम्हारी पूँजी—उतना ही बचाव
 हो जाता है, जिसे न बीटें खा सकते हैं और न जग नष्ट
 कर सकता है। तुम जितना ही कम हो, तुम स्वयं अपने
 जीवन को जितना ही कम व्यक्त करते हो, तुम्हारे पास
 उतना ही अधिक है, अर्थात् तुम्हारा इतरीभूत जीवन उतना
 ही अधिक है, तुम्हारे वियोजित मत्व का समय उतना ही

अधिक है। जो भी कुछ । XVI । राजनीतिक अर्थशास्त्री
 तुम से ज़िदपी में भीर मानवता में नेता है, उसकी वह तुम्हारे
 लिए द्रव्य में भीर धन में प्रतिस्थापना कर देता है ; और
 वह सब, जो तुम नहीं कर सकते, तुम्हारा द्रव्य कर सकता
 है। वह खा और पी सकता है, नृत्यशाला और थियेटर जा
 सकता है, वह यात्रा कर सकता है, वह कला, ज्ञान,
 अनीत की निधिया, राजनीतिक शक्ति हस्तगत कर सकता
 है—यह सब वह तुम्हारे लिए हस्तगत कर सकता है—वह
 यह सब खरीद सकता है वह वास्तविक अर्थपरिधि है।
 असबत्ता यह सब होने हुए भी वह अपने को पैदा करने,
 अपने को खरीदने के अलावा और कुछ नहीं करना चाहता,
 क्योंकि आखिर और सभी कुछ उसका चाकर है, और
 जब मेरे पास मालिक है, तो मेरे पास चाकर भी है और
 मुझे उसके चाकर की जरूरत नहीं। इसलिए सारे भावावेशों
 और मारे क्रियाकलाप को सोभ में डूबा होना चाहिए।
 मजदूर के पास सिर्फ इतना ही होना चाहिये कि वह जीना
 चाहे, और उसे जीना सिर्फ इसलिए चाहना चाहिये कि
 इतना उसके पास हो सके। >

यह सही है कि अब राजनीतिक अर्थशास्त्र के क्षेत्र में
 एक विवाद पैदा हो जाता है। एक पक्ष (लाइबरल, माल्यम,
 आदि) विनाशिता की अनुमति करता है और मितव्यय को कोसता है। दूसरा (सेव, रिफार्म, आदि)
 मितव्यय की अनुमति करता है और विनाशिता को कोसता
 है। लेकिन पूर्वोक्त स्वीकार करता है कि वह विनाशिता
 इसलिए चाहता है कि अप (अर्थात् पूर्ण मितव्यय) उत्पन्न
 कर सके ; और अंतोक्त स्वीकार करता है कि वह मितव्यय
 की धन (अर्थात् विनाशिता) उत्पन्न करने के लिए अनुमति

१। सहिष्णुता-साम्प्रदाय धारा की यह
रखेये तोम को ही धर्मियों के उभार
ना चाहिए, और साम्प्रदाय को मर
साधन के रूप में प्रयुक्त करने हुए
२। धर्म करने की है। धर्म इसमें

सभीरता और धर्मों के साथ यह
सी होकर मैं अपनी संपत्ति को ब
३। तोय-विचारों द्वारा वा यह न

कि यह वस्तुन एक और तोम
का निर्धारण करने है। यह "धर्म"
ते भूल जाती है; यह भूल जाती
कोई उत्पादन न होगा, यह भूल

के परिणामस्वरूप उत्पादन सिर्फ
समय ही हो सकता है। यह इस
के इसके विचारों के अनुसार निस
योग द्वारा निर्धारित होता है धर्म
देशन द्वारा होता है। यह केवल
ही उत्पादित हुआ देखना चाहती है,
के बहुत सी उपयोगी वस्तुओं का
भी आवादी पैदा करता है। दोनों
- साम्प्रदाय और मित्रव्यय, विनाशित
निर्धनता बराबर हैं।

पर तुम मित्रव्ययी होना चाहते हैं
रा नष्ट नहीं होना चाहते हो, तो
न सवेदनों के तोषण को ही
ये, जैसे भोजन, धर्म पर अपने

त, सारे विश्वास, आदि में सहभागिता में भी दूर रखना
हिये।

<तुम्हें हर उस चीज को, जो तुम्हारी है, बिक्रेय,
नि उपयोगी बना देना चाहिये। शहर में राजनीतिक अर्थ-
स्त्री में कुछ शहर में अपने शरीर को बिक्री के लिए
करके, उसे किसी अन्य की धामना को समर्पित करके
न समूल करता है, तो क्या मैं अर्थशास्त्र के नियमों का
नन करना हूँ? (फाम में कारखाना मजदूर अपनी बीवियां
र बेटीयों की बेध्यावृत्ति को काम का अनिश्चित घटा
होते हैं, जो शाब्दिक अर्थों में सही है।) - या शहर में
ना दोस्त योग्यकोवाला को बेच देता है, तो क्या मैं
जनीतिक अर्थशास्त्र के अनुसार नहीं चल रहा हूँ? (और
एस्टो, आदि में व्यापार के रूप में लोगो की प्रत्यक्ष बिक्री
भी सम्म देशों में होती है।) - तो राजनीतिक अर्थशास्त्री
से जवाब देता है तुम मेरे नियमों का अतिक्रमण नहीं
रते; लेकिन देखो कि मझाना नीतिशास्त्र और मझाना
में इसके बारे में क्या कहते हैं। मेरे राजनीतिक अर्थशास्त्रीय
नीतिशास्त्र और धर्म के पाम तुम्हें उपाहना देने को कुछ
ही है, लेकिन - लेकिन भला मैं अब किसका विश्वास करूँ,
जनीतिक अर्थशास्त्र का या नीतिशास्त्र का? - राजनीतिक
अर्थशास्त्र की नैतिकता अधिग्रहण, काम, मितव्यय, समय
है, लेकिन राजनीतिक अर्थशास्त्र मेरी आवश्यकताओं की तुष्टि
का आश्वासन देता है। - नैतिकता का राजनीतिक अर्थ-
शास्त्र सद्बिवेक, सदाचार आदि का प्राचुर्य है, लेकिन
शहर में जियू ही नहीं, तो भला मैं सदाचारपूर्वक कैसे जी
सकता हूँ? और शहर में कुछ जानता ही नहीं, तो भला
धूम में सद्बिवेक कैसे हो सकता है? यह नियोजन की प्रवृत्ति

नैतिक नियमों को अपने ही हथ से ध्वस्त करना है।

<भित्तियामिना को राजनीतिक अर्थशास्त्र के सिद्धान्त के लिये उसके जनसंख्या सिद्धान्त में सबसे प्रतिभाशाली हथ से देखनाया जाता है। लोग बहुत अधिक हैं। मनुष्य का अस्तित्व एक शुद्ध श्रित्तामिना है, और अगर मजदूर "नोतिपरक" है, तो वह बच्चे पैदा करने में कसूमी करेगा। (मिल उन लोगों की मार्क्सवादी भगवन्ता करने का, जो अपने यौन-वर्षों में अपने को समी मिद्ध करने है, और उनकी मार्क्स-निक भगवन्ता करने का मृग्राव देने हैं, जो विवाह की ऐसी अनुत्पादकता के विरुद्ध आचरण करते हैं। * क्या यह गीनिशाम्त्र, तपश्चर्या की शिक्षा नहीं है?) लोगों का पैदा होता मार्क्सवादी दैत्य प्रतीत होता है।>

उत्पादन का जो अर्थ धनियों के मदर्थ में है, वह निर्धना के लिए उसका जो अर्थ है, उसमें प्रकट हो जाता है। ऊपर की तरफ देखें, तो अभिव्यक्ति हमेशा परिष्कृत, प्रच्छन्न, अस्पष्ट—बाह्य आभास है, नीचे की तरफ देखें, तो वह अपरिष्कृत, मौघी और निष्कण्ट—असली चीज है। मजदूर की अपरिष्कृत आवश्यकता लाभ का अमीरो की परिष्कृत आवश्यकता की धनिम्बल नहीं बड़ा अंतर है। नदन के सहचराना घर उनके मानिकों को महलों की नुवना में अधिक प्राप्ति करवाते हैं, बहने का मतलब यह कि मकान मानिक के मदर्थ में वे अधिक बड़ी संपदा, और इस प्रकार (राज-

* James Mill, *Elements of Political Economy*, London, 1821, p. 44 (मार्क्स ने फ्रांसीसी संस्करण, *Éléments d'économie politique*, Traité par J. T. P. Paris, 1823, p. 50, से उद्धरण लिया है।)

[illegible]

यहाँ हम स्वयं सम्बुद्धिमान को अपने जीवन के लिए नियंत्रण का नियंत्रण, निजी भावना के नियंत्रण को प्रभावित करने वाले मानव मात्र का विनिर्माण कहें - सभी सम्बुद्धिमान उन्नत स्थिति नहीं, बल्कि हमारे विपरीत निजी भावना द्वारा उन्नत स्थिति []। इसलिए यदि उनके मन मनुष्य के जीवन का सम्बुद्धि वियोजन बना रहता है और जितना ही कोई उनके बारे में इसी रूप में संवेदन हो, उनका ही छोड़ भी अधिक बना रहता है, वह इसकी [इस वियोजन के नियंत्रण की] निधि केवल सम्बुद्धिमान साहस ही हो जा सकती है।

*यह पादुतिथि के पन्ने या निचला बाया कोना कटा हुआ है, जिससे इस पत्र की पत्तियों को पढ़ पाना, उनमें तात्पर्य विधान और उनका अर्थ निगल पाना असम्भव है। — स ०

निजी संपत्ति के विचार का उन्मूलन करने के लिए कम्यु-
निज्म का विचार पूर्णतः पर्याप्त है। वास्तविक निजी संपत्ति
उन्मूलन करने के लिए वास्तविक कम्युनिस्ट कार्य आव-
श्यक है। इतिहास स्वयं इस मजिल पर ले जायेगा, और
गति, जिसे सिद्धांत रूप में हम पहले ही एक स्वयं-सि-
द्ध गति की तरह जानते हैं, वास्तव में एक बहुत ही
ठोस और दीर्घकालिक प्रक्रिया होगी। लेकिन हमें इसे एक
स्वयं-सिद्ध प्रगति मानना चाहिये कि हमने आरंभ में ही इस
सिद्धांतिक गति के मौलिक स्वरूप और सत्य की चेतना को—
एक ऐसी चेतना को, जो उसके भी आगे जानती है—प्राप्त
कर लिया है।

जब कम्युनिस्ट शिल्पी आपस में सहकार करते हैं, तो
यह नया पहला साम्य सिद्धांत, प्रचार, आदि होता है। लेकिन
यह ही, इस सहकार के परिणामस्वरूप, वे एक नयी
आवश्यकता—समाज की आवश्यकता—प्राप्त कर लेते हैं,
और जो साधन की तरह प्रकट होता है, वह साम्य बन
जाता है। जब भी समाजवादी मजदूर एक साथ
मिलते हैं, इस व्यावहारिक प्रक्रिया में सबसे श्रेष्ठ परिणाम
पाने में आते हैं। धूम्रपान, मुरापा, खाना, आदि जैसी
चीजें जब संपर्क साधन प्रयत्न उन्हें एक साथ लाने के साधन
बनी हैं। साहचर्य, भगत और वातपीत, जिसका साम्य
साहचर्य ही है, उनके लिए काफी है, मनुष्य का भाईचारा
उनके लिए कोरा मुहावरा नहीं है, बल्कि जीवन की वास्त-
विकता है और उनके अम-नोपित जरीरों से हम पर मनुष्य
की महानता की आभा विकीर्ण होती है।

। XX । जब राजनीतिक मर्यादाएं यह दावा करना
है कि मांग और पूर्ति सदा एक दूसरे को अनुमानित कर लेते

गन्ध की तरह जानना है। ऐसे धन के साथ मनुष्य की
 भवमानना घगना घटकार के रूप में, घगना विनये के
 योगों की विद्वानियों की बनाने गया आ मरना है, जो
 फिज्जुन गंधे किये जाने के रूप में, और घगना इस प्रति
 घानि के रूप में गामने घानो है कि स्वयं उगा प्रतिघति
 घनिध्य और घविगम, घनुत्पादक उपर्माण ही दूसरे घति
 के धम की और इसलिये उनके निर्वाह की गन है। वह
 मनुष्य की सात्विक शक्तियों की मिद्धि को केवल घा
 घनिरेको, घानी सही और मनकी, केतुकी बलानाओं की
 मिद्धि की तरह समझता है। दूसरी ओर, यह धन, जो धन
 को केवल एक साधन के रूप में ही, केवल इस रूप में है
 जानता है कि जो मिवा गष्ट किये जाने के और किसी वान
 के लायक नहीं है और जो इसलिये साथ-साथ ही दाम और
 स्वामी, साथ-साथ ही विशालहृदय और नीच, सखी,
 धृष्ट, घमडी, परिष्कृत, सुसंस्कृत और प्रत्युत्पन्नमति भी है—
 इस धन ने अभी धन को अपने पर एक सर्वथा इतर शक्ति
 के रूप में अनुभव नहीं किया है इसके विपरीत वह अपने
 केवल अपनी शक्ति को ही देखना है, और धन [वही,]
 वलिक आनंद [उसका अतिम]* लक्ष्य [है]।

इस “ ॥ XXI ॥ और धन की प्रकृति के बारे में
 इन्द्रियगत आभासों से चकाचौध दमनती भाति के सामने
 कामकाजी, गंभीर, नीरस और मितव्ययी उद्योगपति घा
 है, जो धन की प्रकृति के बारे में पूर्णतः प्रबुद्ध है और जो

* वाङ्मयि यहा अनिग्रस्त है।—स०

१६० के इस पन्ने का एक हिस्सा कटा हुआ है।

२ कोई तीन पक्तियाँ अग्रप्य हैं।—स०

होती है, इग्नानि यह वही तेज-देन का गुण है कि जो मूलतः धर्म विभाजन का कारण बनता है। उदाहरण के लिए, श्रिताग्रियों या पशुचार्यों के सिने वरीने में कोई ग्राह्य आदमी किसी भी और आदमी की वनिम्बन ज्यादा मुनैदी और दशना से तौर ही बमान बनाता है। वह उनका आचर करने मारिने से डरो या मृगमाग के बदेने विनिमय कर नेता है, और आग्रिर वह देखता है कि वह इस तरीने से उन्हें ज्यादा बार और माम प्राप्त कर नेता है कि जिनका वह खुद मैदान में जाकर कर सकता है। इसलिए खुद अपने स्वार्थ की खातिर कमान, आदि का बमान उमका मुख्य कार्य बन जाना है [.]।

“विभिन्न लोगों में नैसर्गिक प्रतिभाओं की भिन्नता [] धर्म विभाजन का इतना कारण नहीं है, [.] जितना परिणाम है। तेज-देन [] और विनिमय करने के गुण के बिना हर आदमी ने अपने लिए जीवन की हर आवश्यकता और सुविधा को प्राप्त कर लिया होता [.] सभी के पास [. .] करने को वही काम हुआ होता, और धर्म की कोई ऐसी भिन्नता न होती कि धनेली जो प्रतिभाओं में कोई बड़ी भिन्नता पैदा कर सकती थी।

“जैसे यह गुण ही लोगों में [] प्रतिभाओं की भिन्नता पैदा करता है, [] जैसे ही यह गुण ही इस भिन्नता को उपयोगी बनाता है। उसी जाति के पशुओं के कई सर्वम [] प्रकृति से प्रवि-
 ना का उससे कहीं अधिक उल्लेखनीय वैशिष्ट्य प्राप्त करते हैं, जितना प्रथा तथा शिक्षा के पूर्व मनुष्यों में होता लगता है। प्रकृति में दार्शनिक प्रतिभा और बुद्धि में अन्वेषण में आधा भी इतना भिन्न नहीं, जितना मैट्रिफ़ [कुत्ता घेताउड कुत्ते में, यथवा . स्पिनियन में भिन्न होता है, यथवा यह घेतोला

कर्म की शक्ति के प्रभाव के कारण होने ही ल
ही धर्मे में पूरी तरह से समा देने का कोई प्रयत्न
नहीं प्राप्त हो सकता।...

समाज की उन्नत अवस्था में "इस प्रकार प्रत्येक
आदमी विनिमय द्वारा जीता है और किसी एक से
व्यापारी बन जाता है, और समाज स्वयं विनिमय
होकर बह बन जाता है, जो सही मानों में वाणिज्य
समाज होता है।" (देखें, देखें दे लेनी [Elements
d'idéologie, Paris, 1826, pp 68 and 78] "समाज
अन्योन्य विनिमयों की श्रृंखला है, वाणिज्य में मनुष्य
का समस्त सार समाविष्ट है।") .. पूर्वियों का
मध्यम श्रम विभाजन के साथ-साथ बढ़ता जाता है
तथा तत्प्रतिफल।

यह रही ऐडम स्मिथ की बात। *

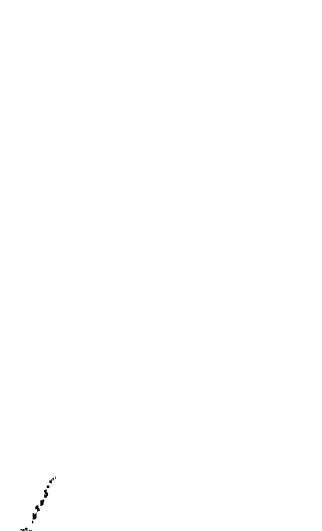
"यदि प्रत्येक परिवार जो कुछ भी वह करता
है, वह सब पैदा करे, तो समाज का काम इसके
बावजूद चलता रह सकता है कि किसी भी तरह का
कोई विनिमय नहीं होता है; आधारभूत हुए बिना
विनिमय समाज की हमारी उन्नत अवस्था में अपरिहार्य
है। श्रम विभाजन मनुष्य की शक्तियों का युक्तियुक्त
परिणियोजन है, वह समाज के उत्पादन-उत्पत्ति
शक्ति और उसके सुखों-को बढ़ाता है, किन्तु वह हर
व्यक्ति की अलग-अलग योग्यता को घटाता, कम
करता है। विनिमय के बिना उत्पादन नहीं हो सकता।"

* Adam Smith, *Wealth of Nations*, Book I, chs. II-IV,
95 (Garnier, t. I, I, chs II-IV, pp 29-40), अनावश्यक
और परिघर्षनों के साथ उद्धृत। - म.

मशीनरी के नियोजन में प्रायः यह पाया जाता है कि परिणामों का कुशल विवरण द्वारा, उन मशीनों के प्रयोग करने के द्वारा, जिनमें किसी भी प्रकार के दूसरे की सहायता करवायी जा सकती है। साथ साने के द्वारा बढ़ाया जा सकता है। यदि सामान्यतया कई भिन्न क्रियाओं को उभी लेनी की दक्षता के साथ नहीं कर सकते, जिससे वे प्रत्यक्ष द्वारा कुछ क्रियाओं को करना सीख सकते हैं, इसी प्रकार प्रत्येक आदमी पर डाली जानेवाली क्रियाओं को उचित की जितना संभव हो, उतना सीमित करना होने लाभदायी रहता है। अधिकतम लाभ के साथ काम को विभाजित करने और लोगों तथा मशीनरी के शक्तियों को वितरित करने के लिए अधिकतम मात्रा में बड़े पैमाने पर बारबार चलाना, दूसरे शब्दों में, जिसों को बड़ी मात्राओं में उत्पादित करना आवश्यक होता है। यही लाभ बड़ी उद्योगशालाओं को उन्नत देता है; जिनमें से प्रत्यक्ष सुविधाजनक स्थानों पर स्थित कुछ उद्योगशालाएँ प्रायः एक देश की ही नहीं, बल्कि कई देशों को उत्पादित जिस की उन्हें जितनी मात्रा चाहिये, उसकी पूर्ति करती हैं।”

यह मिला कहते हैं।”

लेकिन सारा आधुनिक राजनीतिक धर्मशास्त्र इस बारे में सहमत है कि धन विभाजन और उत्पादन का धन, धन विभाजन और पूँजी संचय परस्पर एक दूसरे को निर्धारित करते हैं, ठीक जैसे वह इस बारे में सहमत है कि केवल वह निजी संपत्ति ही सबसे उपयोगी और सर्वोत्तम रूप



XXXVIII | अम विभाजन तथा विनिमय का विवेचन
 धिक महत्व का है, क्योंकि ये जाति सक्रियता और ज्ञानि-
 त के माते मानव क्रियाकलाप तथा सांत्विक शक्तियों की
 अतः विद्योजित अभिव्यक्तिया हैं।

यह दावा करना कि अम विभाजन और विनिमय निजी
 संपत्ति पर आधारित है, यह दावा करने के सिवा और
 नहीं है कि निजी संपत्ति का सार अम है—ऐसा दावा,
 राजनीतिक अर्थशास्त्री सिद्ध नहीं कर सक्ता और जिसे
 उसके लिए सिद्ध करना चाहते हैं। ठीक इसी तथ्य से
 प्रमाण विद्यमान है कि अम विभाजन और विनिमय
 संपत्ति के ही पहलू हैं, एक ओर यह कि मानव जीवन
 अपने मिद्धिकरण के लिए निजी संपत्ति की आवश्यकता
 और दूसरी ओर यह कि उसे सब निजी संपत्ति के
 लोभ की आवश्यकता है।

अम विभाजन और विनिमय ही वे दो परिघटनाएँ हैं,
 राजनीतिक अर्थशास्त्री को अपने विज्ञान के सामाजिक
 रूप की शोधी बघारने की तरफ ले जाती हैं, जब कि
 वे अम वह अपने विज्ञान के अंतर्विरोध—समाज का
 सामाजिक, विशेष हितों द्वारा अभिप्रेरण—को भी अचेतन
 प्रत्यक्षित देता है।

हमें जिन कारकों पर विचार करना है वे ये हैं मजदूरी
 के, विनिमय करने की प्रवृत्ति—जिनकी बुनियाद स्वार्थ
 मिलती है—को अम विभाजन का कारण अथवा अन्त्योन्त्य
 माना जाता है। सेय विनिमय को समाज की प्रवृत्ति
 लिए आधारभूत नहीं मानते हैं। धन—उत्पादन—की
 रूपा अम विभाजन और विनिमय से की जाती है। अम
 विभाजन के परिणामस्वरूप वैयक्तिक क्रियाकलाप की परि-

'एथेसवासी टाइमन' में जेबमपीयर

"भोला ? पीला , जगमग , धनभोल मोला ?

नहीं देवताघो , मैं

बोई निरा उगासक नहीं हूँ !

इतना इसका स्वाद को मफेद , चुने

को बना , सही गनन को , नीच को

धेष्ठ , युवा बूढ़ को ,

कायर को वीर बना देगा ।

अरे , यह तो तुम्हारे

पुत्राग्रियो और चाकरो को भी

बचल में धमीट ले जायेगा ,

बीरो के मिरो के नीचे में उनके तकिये खींच लेगा

यह पीला दाम

घमों को गडेभा और नोडेगा , देगा आजीप

पापियो को , जीर्ण कुछ को पूज्य बना देगा , देगा

चोरो को पद , पदवी , प्रतिष्ठा और पीठ पर

सामदो के साथ अनुमोदन यही है

वह , जो जर्जरा , वफितगत विधवा को

नववधू बना देता है ; नाभूरी फोडे और धम्पतान

जिमे गदे में डाल देंगे , उसे

यह फिर

वासनी नवयौवन और भावप्य देता है ।

आ , अधिकास्त धरती आ ,

तू छिनाल सारी दुनिया की

गाछी की मगन में जो बँद कराती । "

और धागे भी

मैं स्वयं, द्रव्य का धारक हूँ। द्रव्य की शक्ति की सीमा
 मेरी शक्ति की सीमा है। द्रव्य के गुण मेरे—धारक के—
 गुण तथा तात्त्विक शक्तियाँ हैं। इस प्रकार मैं जा हूँ और
 जगत् में मैं समर्थ हूँ, वह किसी भी प्रकार मेरी वैयक्तिकता
 का नहीं निर्धारित होता है। मैं कुरूप हूँ, लेकिन मैं धारण
 किए सुंदरतम स्त्री को खरीद सकता हूँ। इसलिए मैं कुरूप
 नहीं हूँ, क्योंकि कुरूपता के प्रभाव—उसकी निवारक शक्ति—
 को द्रव्य निराकृत कर देता है। अपने वैयक्तिक लक्षणों के
 अनुसार मैं लगड़ा हूँ, लेकिन द्रव्य मुझे चौबीस पैग में
 मुक्त कर देता है। इसलिए मैं लगड़ा नहीं हूँ। मैं बुरा,
 बेईमान, धरित्रीहीन, मूर्ख हूँ, लेकिन द्रव्य का, और इस-
 लिए उसके धारक बन, सम्मान किया जाना है। द्रव्य सर्वोच्च
 बनाई है, इसलिए उसका धारक बना है। इसके अलावा
 द्रव्य मुझे बेईमान होने के संघट में बचाता है—इसलिए मुझे
 ईमानदार माना जाता है। मैं बेधकल हूँ, लेकिन द्रव्य सभी
 चीजों की असली धारक है, फिर भी उसका धारक वैधकल
 कैसे हो सकता है? इसके अलावा वह बुद्धिमानों को खरीद
 सकता है, और जो बुद्धिमानों पर शक्ति रखता है क्या
 वह बुद्धिमानों से अधिक बुद्धिमान नहीं है? क्या अपने द्रव्य
 की बदौलत मैं उस सबसे समर्थ नहीं हूँ जिसके लिए मानव
 मन साक्षात्कृत रहता है, क्या मेरे पास मारी मानव समताएँ
 नहीं हैं? इसलिए क्या मेरा द्रव्य मेरी समस्त अधमताओं
 को उनके विरोध में नहीं परिणत कर देता है?

अगर द्रव्य ही मुझे मानव जीवन के साथ बाधनवाला,
 समाज को मेरे साथ जोड़नेवाला, मुझे प्रकृति और मनुष्य
 के साथ संबद्ध करनेवाला बंधन है, तो क्या द्रव्य समस्त
 बंधनों का बंधन नहीं है? क्या वह सभी संबंधों को तोड़

होगा और नही मरना है। दुर्लभता का ही कारण है
सांस्कृतिक आधुनिकता की वजह है। यह सिद्धांत है कि
कानून व कृषि का नाम है। दोनो का संबंध है।
आधुनिक - । । समाज की सामाजिक शक्ति है।

समाजिक इकाई का ही नाम है। समाज का ही नाम है।
। । यह समाज इकाई है - समाज का ही नाम है।
समाज का ही नाम है। समाज का ही नाम है।
समाजिकता का ही नाम है। समाज का ही नाम है।
समाज का ही नाम है। समाज का ही नाम है।

। । यह समाज इकाई का ही नाम है। समाज का ही नाम है।
समाज का ही नाम है। समाज का ही नाम है।

समाज का ही नाम है। समाज का ही नाम है।
समाज का ही नाम है। समाज का ही नाम है।
समाज का ही नाम है। समाज का ही नाम है।
समाज का ही नाम है। समाज का ही नाम है।
समाज का ही नाम है। समाज का ही नाम है।

जा कुछ भी मैं मनुष्य के नाने नहीं कर सकता।
और इसलिए जिसे करने में मेरी सभी शक्तें तात्पर्य
शक्ति का प्रथम है। वह मैं इच्छा के द्वारा कर सकता
हूँ। इस प्रकार इच्छा इन शक्तियों को एक ऐसी चीज में
देता है, जो स्वयं उसमें नहीं है - अर्थात् उसे अपने वि
चार देता है।

कोई काम व्यर्थ नहीं करता है या प्रगति

यहां एक शब्द पढ़ने में नहीं आता है।

डाकगाड़ी* पकड़ना चाहता हूँ, क्योंकि मुझमें पैदल जाने की शक्ति नहीं है, तो द्रव्य व्यञ्जन और डाकगाड़ी मुझे दिना देना है। अर्थात् यह मेरी इच्छाओं को कल्पना के क्षेत्र की धीरे से परिवर्तित कर देता है, उन्हें उनके अवहित, स्थिति अथवा वाञ्छित अस्तित्व में उनके इन्द्रियगम्य, वास्तविक अस्तित्व में—कल्पना से जीवन में, कल्पित मत्व में वास्तविक मत्व में—रूपान्वित कर देता है। इस मध्यस्थता को संपन्न करने में [द्रव्य] सर्वोत्तम सृजनात्मक शक्ति है।

बेशक भाग का अस्तित्व उसके लिए भी होता है, जिसके पास द्रव्य नहीं है, लेकिन उसकी भाग मेरे लिए, एक तीमरे पक्ष के लिए, [अन्धो] के लिए बिना किसी प्रभाव अथवा अस्तित्व के मात्र कल्पना की चीज़ है, § XLIII। और इसलिए मेरे लिए भी यह अर्थार्थ और अर्थस्तविक रहती है। द्रव्य पर आध्यात्मिक प्रभावी भाग तथा मेरी आवश्यकता, मेरी भावना, मेरी इच्छा, आदि पर आध्यात्मिक प्रभावी भाग के बीच अन्तर ही सत्त्व तथा विचारण के बीच, मेरे भीतर जो विचार केवल अस्तित्वमान है, उसके और उस विचार के बीच अन्तर है, जो मेरे बाह्य अर्थार्थ वस्तु के रूप में अस्तित्वमान है।

अगर मेरे पास यात्रा के लिए द्रव्य नहीं है, तो मुझे यात्रा करने की कोई आवश्यकता—अर्थात् कोई आन्तर्निहित

* यूरोप में रेलों के आगमन के पहले डाक लांसे-ले जाँ के लिए तेज़ घोड़ागाड़ियों का प्रयोग किया जाता था। इन डाकगाड़ियों में ज्यादा किराया देकर यात्रा भी की जा सकती थी।—स०

चूँकि मूल्य को विद्यमान तथा मज्जित धारणा के रूप में
 द्रव्य सभी चीजों को सम्भ्रात करना और उलझाना है,
 इसलिए यह सभी चीजों का साम संभ्रांतिकरण और उलझाव—
 ज्वरती दुनिया—है, समस्त मैममिक तथा मानविक गुणों
 का उलझाव और उलझाव है।

जो जीवों को खरीद सकता है, वह बीर है, चाहे वह
 कायर क्यों न हो। चूँकि द्रव्य का किसी एक विशिष्ट गुण,
 किसी एक विशिष्ट वस्तु, अथवा किसी एक विशिष्ट नास्त्विक
 मानव शक्ति से नहीं, बल्कि अपने धारक के दृष्टिकोण में
 मनुष्य तथा प्रकृति के समस्त वस्तु जगत से विनिमय किया
 जाता है, इसलिए यह प्रत्येक गुण का दूसरे, विपरीत तक,
 गुण तथा वस्तु में विनिमय करने का काम देता है यह
 सम्भवनाओं का भूमिलन है। यह अनविरोधों को आपस
 में आनिमन बढ़ा देता है।

मनुष्य को मनुष्य और समाज के साथ उसके संबंध का
 मानविक मान जो तब तुम प्रेम का केवल प्रेम से, विश्वास
 का केवल विश्वास से ही विनिमय कर सकते हो तथा इसी
 प्रकार आने भी। तुम कला का आस्वादन करना चाहते हो,
 तो तुम्हें कला की दृष्टि में परिष्कृत व्यक्ति होना चाहिये,
 अगर तुम दूसरों लोगों पर प्रेम डालना चाहते हो, तो
 तुम्हें दूसरे लोगों पर प्रेम और प्रोत्साहक प्रभाव डालने-
 वाला होना चाहिये। मनुष्य और प्रकृति के साथ तुम्हारा
 हर संबंध तुम्हारी इच्छा की, तुम्हारे वास्तविक वैयक्तिक
 जीवन की वस्तु के अनुरूप एक विशिष्ट अभिव्यक्ति होना
 चाहिये। अगर तुम बढ़ते में प्रेम प्रेरित चिये बिना प्यार
 करते हो—अर्थात् अगर प्रेम के नाते तुम्हारा प्रेम समान
 प्रेम नहीं उत्पन्न करता, अगर स्नेही व्यक्ति के नाते स्वयं

XIII। हेनरीय डंडराद के मरण में धारोचना की कि
 के मरण (पाउण, *Synoptiker*) किनी वर के
 धी, धीर उम धारोचना की किम के बाद भी यह के
 किनी वर धारोचना में पायी, पर पाउण धारो *Die gute*
Suche der Freiheit में सिद्ध कर देने है, जब वर को
 पूर्ण दाम उठावे उठावने प्रम - "तो धर तई का का
 हा?" - जो उन्हे भावी धारोचनी के हवाने वरने कर
 कर देने है।^{१०}

मेविन धर भी - जब फायरबाच ने *Anekdoten* के
 अपनी 'Thesen' में * धीर विस्तार से *Philosophie der*
Zukunft में भी सिद्धान्त पुराने डंडराद की
 दर्शन का उलट दिया है, जब, दूसरी धीर, उम धारोचना
 पथ ने, जो स्वयं यह सब हासिल करने में प्रथम था,
 फिर भी इस सबको हासिल होने देख लिया है धीर स्व
 को विगुद्ध, अटल, निरपेक्ष धारोचना घोषित कर दिया
 है, जिसे स्वयं की पूर्ण स्पष्टता प्राप्त हो गयी है, जब धारो
 बोद्धिः सहकार में इस धारोचना ने इतिहास की संपूर्ण
 प्रक्रिया को शीघ्र जगत तथा स्वयं के बीच संबध में परिणत
 कर दिया है (स्वयं के सामने शीघ्र जगत "जनमाधारण"
 की कोटि में आता है) और सभी सैद्धांतिक वैपरीत्यों को
 स्वयं अपनी चतुरता और जगत की मूर्खता के धकेले सैद्धांतिक
 वैपरीत्य - धारोचनापरक खरीस्त तथा मानवजाति, "भीड़",
 के वैपरीत्य - में विनियत कर दिया है, जब हर दिन धीर

* Ludwig Feuerbach, 'Vorläufige Thesen zur Reformo-
 von der Philosophie' in *Anekdoten zur neuesten deutschen*
Philosophie und Publistik - १०

दर्शन के करने विज्ञेता है। उसी उत्पत्ति की व्याप्ति को, और बिना धार्मिक सम्बन्धों से बड़े, फारमार्म, जे दुर्लभ या इन है, उनही (धर्मों के) विभिन्न दृष्टिकोण से मुक्त भी नहीं की जा सकती है।

फारमार्म की महान उत्पत्ति है

(१) यह प्रमाण कि दर्शन विचार में परिणत तथा विचार द्वारा प्रतिपादित धर्म के, अर्थात् मनुष्य के सार के निषेध के अस्तित्व के एक अन्य रूप तथा दृष्टि के, निषेध और कुछ नहीं है, धर्म समान रूप में निन्दनीय है,

(२) 'मनुष्य के साथ मनुष्य' के सामाजिक सत्य की विज्ञान का बुनियादी उद्गार बनाकर वास्तविक भौतिकवाद और यथार्थ विज्ञान की स्थापना,

(३) उनके द्वारा निषेध के निषेध के मुकाबले में, जे निषेध प्रत्यक्ष होने का दावा करता है, अन्तिमिर्भर प्रत्यक्ष प्रत्यक्षन स्वयं पर आधारित प्रत्यक्ष को रखा जाता।

फारमार्म हेगेलीय दृष्टिकोण की व्याख्या इस प्रकार की है (और उसके द्वारा उन प्रत्यक्ष तथ्यों से प्रारम्भ करने का अधिकार स्थापित करते हैं, जिन्हें हम सचेतनों से जानते हैं)

हेगेल भूतद्वय के विद्योतन (नवशास्त्र में, अपरिचित अमूर्तस्वयं मायभीम) से - निषेध तथा स्थिर अमूर्तस्वयं से - प्रारम्भ करते हैं, महज दृष्टि से बड़े, तो इसका मतलब है कि वह धर्म तथा ईश्वरभीमात्मा से प्रारम्भ करते हैं दूसरे, वह अपरिचित को प्रकट करते हैं और वास्तविक इन्द्रियगम्य, यथार्थ, परिमित, विज्ञेता को स्थापित करने (दर्शन, धर्म तथा ईश्वरभीमात्मा का निराकरण)। तीसरे, वह प्रत्यक्ष की फिर निराकृत करने हैं और

३. तर्कबुद्धि। तर्कबुद्धि की निरिच्छा और तर्कबुद्धि का स्व। (क) तर्कबुद्धि की एक प्रक्रिया के नाने प्रेक्षण। प्रकृति और आत्मचेतना का प्रेक्षण। (ख) तर्कबुद्धिमूलक आत्मचेतना की स्वयं अपनी सचियता द्वारा सिद्धि। मुख्य और आवश्यकता। स्वयं का नियम और सहकार का पागलपन। नेकी और बुराई का द्वार। (ग) वैयक्तिकता, जो अपने में और अपने में वास्तविक है। आत्मिक पशुजगत तथा छल अथवा वास्तविक तथ्य। विधिकार के नाते तर्कबुद्धि। कानूनों का परीक्षण करनेवाली तर्कबुद्धि।

ख. मन।

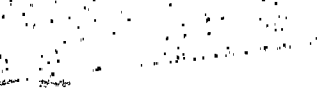
१. सच्चा मन, नीतिशास्त्र। २. अपने में वियोजित मन, संस्कृति। ३. अपने पर भावस्त मन, नैतिकता।

ग. धर्म। नैसर्गिक धर्म। कलाजन्य धर्म, धुनिजन्य (इलहामी) धर्म।

घ. परम ज्ञान।

चूँकि हेगेल का *Enzyklopädie** तर्क में, विशुद्ध परित्यक्तात्मक चिंतन से शुरू होता है और परम ज्ञान के साथ—आत्मचेतन, आत्मबोधवाही दार्शनिक अथवा परम (अतिमानव) अमूर्त मन के साथ खत्म होता है, इसलिए वह अपनी समग्रता में दार्शनिक मन के तार के प्रवर्तन, आत्मवस्तुकरण के अभाव और कुछ भी नहीं है और दार्शनिक मन अपने आत्मनिर्धारण के भीतर साधने—अर्थात् अपने

* Georg Wilhelm Friedrich Hegel, *Enzyklopädie der philosophischen Wissenschaften im Grundrisse*.—म०



गरते गरते नेवन चेतना में, शुद्ध विचार में, धर्म-विचार
 में होनेवाला विनियोजन ही है। यह इन समुप-
 विचारों के नाने और विचारों की गतियों के नाने विधि
 है। फलतः अपने पूर्णतः नकारात्मक तथा धर्म-
 स्वल्प के बावजूद और अपने में समाविष्ट वास्तविक
 चना के बावजूद, जो प्रायः कही बादवाने शिक्षा
 पूर्वानुमान कर लेती है, *Phänomenologie* में
 की उत्तरवर्ती वृत्तियों का अनालोचनात्मक प्रत्यक्षता
 इतना ही अनालोचनात्मक प्रत्यक्षवाद-विज्ञान इ
 भाविक जगत का यह दार्शनिक विषयतः तथा पुरस्
 पहले ही एक सम्भाव्यता, एक भेद, एक बीज के
 अतर्हित है।

दूसरे: मनुष्य के लिए वस्तुगत जगत का प्रमाणों
 उदाहरण के लिए यह समझ कि इन्द्रियगम्य चेतना
 अमूर्त रूप में इन्द्रियगम्य चेतना नहीं है, बल्कि मानव
 में इन्द्रियगम्य चेतना है, और यह कि धर्म, धन, आदि
 वस्तुकरण का, काम में लगायी गयी मनुष्य की
 शक्तियों का वियोजित जगत मात्र है और यह कि
 वे सच्चे मानव जगत का पथ मात्र है—यह स्वीकरण
 इस प्रक्रिया में अतर्द्धि हेगेल में इसलिए इस रूप में
 होती है कि सवेद, धर्म, राज्यसत्ता, आदि मानसिक
 हैं; कारण कि केवल मन ही मनुष्य का वास्तविक र
 और मन का सच्चा रूप चित्तमयी मन, तार्किक, प
 मन है। प्रकृति का और इतिहास द्वारा सृजित प्र
 मनुष्य के उत्पादों—का मानव स्वरूप इस रूप में
 होता है कि वे समूर्त मन के उत्पाद हैं और इगति
 हैसियत से मन की वास्तविक-विचार-सत्ता—है। इ

मनुष्य का सार, जो कमीटी पर धरा उतरता है वह धर्म के केवल सकारात्मक पहलू को देखने है, नकारात्मक को नहीं। धर्म इतरीभवन के भीतर, अथवा इतरीभूत मनुष्य के रूप में मनुष्य का अपने लिए हो जाना है। हेगेल जिस अपने धर्म को जानने और भावने है, वह अमूर्त रूप में मानसिक धर्म है। अतः जो दर्शन का सार बनाना है—अपने को जाननेवाले मनुष्य का इतरीभवन, अथवा स्वयं चिन्तन करता इतरीभूत विज्ञान—उसे हेगेल धर्म का सार समझने है, और इसलिए पूर्ववर्ती दर्शन के विपरीत वह उसके विभिन्न पहलुओं का मयोग कर सकते हैं और अपने दर्शन को वास्तविक दर्शन की तरह प्रस्तुत कर सकते हैं। अन्य दार्शनिकों ने जो किया था—यह कि वे प्रकृति की और मानव जीवन की पृथक कलाओं की आत्मचेतना की, अर्थात् अमूर्त आत्मचेतना की, बनाए समझने थे—यह हेगेल को दर्शन के कार्यों के रूप में ज्ञात है। अतः उनका विज्ञान परम है।

आइये, अब अपने विषय पर लौट आये।

‘परम ज्ञान’। *Phänomenologie* का अंतिम अध्याय।

मुख्य ज्ञान यह है कि [हेगेल के अनुसार] चेतना की वस्तु आत्मचेतना के सिवा और कुछ भी नहीं है, अथवा यह कि वस्तु केवल वस्तुवस्तु आत्मचेतना—वस्तु के रूप में आत्मचेतना—ही है। (मनुष्य का उन्मूलन = आत्मचेतना)।

इसलिए समस्या चेतना की वस्तु पर पार पाने की है। अपने में वस्तुत्वता को एक विद्योजित मानव सबंध समझा जाता है, जो मनुष्य के सार के, आत्मचेतना के, अनुरूप नहीं है। इसलिए विद्योजन की परिधि के भीतर एक इतर चीज की तरह उत्पन्न मनुष्य के वस्तुरूप सार का पुनर्वि-

ग्राह्य प्रतीत होता है—अपनी अंतरात्म्य, प्रच्छन्न प्रकृति (जिसे दर्शन मात्र प्रकाश में लाता है) के अनुसार यथार्थ मानव सार के, आत्मचेतना के वियोजन के प्रकटीकरण के अभाव और कुछ नहीं है। इसलिए इसका बोध प्राप्त करना विज्ञान सवृत्तिशास्त्र [सांयुक्तिकी—अथवा दृश्यघटनाविज्ञान (phenomenology)] कहलाता है। अतएव वियोजित वस्तुस्य सार का समस्त पुनर्विनियोजन आत्मचेतना में समावेशन प्रतीत होना है अपने तात्त्विक सत्त्व को नियंत्रण में ले लेनेवाला आदमी मात्र आत्मचेतना है, जो वस्तुस्य सारा को नियंत्रण में ले लेती है। अतः वस्तु का आत्म में प्रत्यावर्तन वस्तु का पुनर्विनियोजन है।

अपने सभी पहलुओं में व्यक्त करने पर चेतना की वस्तु पर पार पाने का मनसब है।

(१) कि अपने में वस्तु स्वयं को चेतना के समक्ष किसी निरोभायी चीज की तरह पेश करती है।

(२) कि यह आत्मचेतना का इतरोन्मयन है, जो वस्तुत्व^{११} को कल्पित करता है।

(३) कि इस इतरोन्मयन का केवल सकारात्मक ही नहीं, बल्कि सकारात्मक महत्व भी है।

(४) कि इसका यह मतलब केवल हमारे लिए या अनर्हित रूप में ही नहीं है, बल्कि स्वयं आत्मचेतना के लिए है।

(५) आत्मचेतना के लिए वस्तु का निषेध, अथवा उसका स्वयं को निराकृत करना इस उध्य के कारण सकारात्मक महत्व रखता है—अथवा वह वस्तु की इस व्यर्थता को जानती है—कि वह अपने को इतरोन्मूत कर रही है, क्योंकि इस इतरोन्मयन में वह स्वयं की वस्तु की तरह कल्पना कर रही



अपने एक तात्त्विक वस्तु, अतः उसका वस्तुरूप मात्र, है।
 और चूँकि जिसे अपने में विषयी बनाया जाता है, वह
 तात्त्विक मनुष्य नहीं है और फलन न प्रकृति ही है—
 योकि मनुष्य तो मानव प्रकृति है—बल्कि केवल मनुष्य का
 अमूर्त रूप, आत्मचेतना, ही है, इसलिए वस्तुत्व इतरीभूत
 आत्मचेतना के असावा और कुछ नहीं हो सकता है)। यह
 व्यापारिक ही है कि यथार्थ (अर्थात् भौतिक) तात्त्विक
 वस्तुओं में युक्त और सपन्न मर्जीव, प्राकृतिक मत्त्व की
 अपने सार की यथार्थ प्राकृतिक वस्तुएँ हो, और यह कि
 उनके आत्म-इतरीभवन एक यथार्थ, वस्तु जगत को, लेकिन
 साहजा की सीमाओं के भीतर, और इसलिए एक अदृश्य
 जगत को कल्पित करने की तरफ ले जाये, जो स्वयं उनके
 तात्त्विक मत्त्व का नहीं है। इसमें कुछ भी असोध्यगम्य अथवा
 रहस्यमय नहीं है। बल्कि अगर यह अव्यवहार होना, तो यह
 रहस्यमय हुआ होता। लेकिन यह इतना ही स्पष्ट है कि
 अपने इतरीभवन से आत्मचेतना केवल वस्तुत्व को ही, यथार्थ
 केवल एक अमूर्त वस्तु को ही, अमूर्तकरण की चीज को ही,
 न कि यथार्थ वस्तु को, कल्पित कर सकती है। इसके
 [XXVI]^{००} अलावा, यह स्पष्ट है कि फलन वस्तुत्व
 आत्मचेतना की सापेक्षता में स्वतंत्रता से, तात्त्विकता में
 सर्वथा रहित है, कि इसके विपरीत वह मात्र एक मूर्ष्ट—
 आत्मचेतना द्वारा कल्पित चीज ही है। और जो अपने को
 पुष्ट करने के बजाय कल्पित है, वह कल्पित करने के कार्य
 का पुष्टिकरण मात्र है, जो निमित्त मात्र के लिए अपनी
 ऊर्जा को उत्पाद के रूप में स्थिर कर देता है और उसे—
 किन्तु निमित्त मात्र के लिए ही—एक स्वतंत्र, वास्तविक
 पदार्थ का आभास दे देता है।

